श्री अरविन्द कर्मधारा

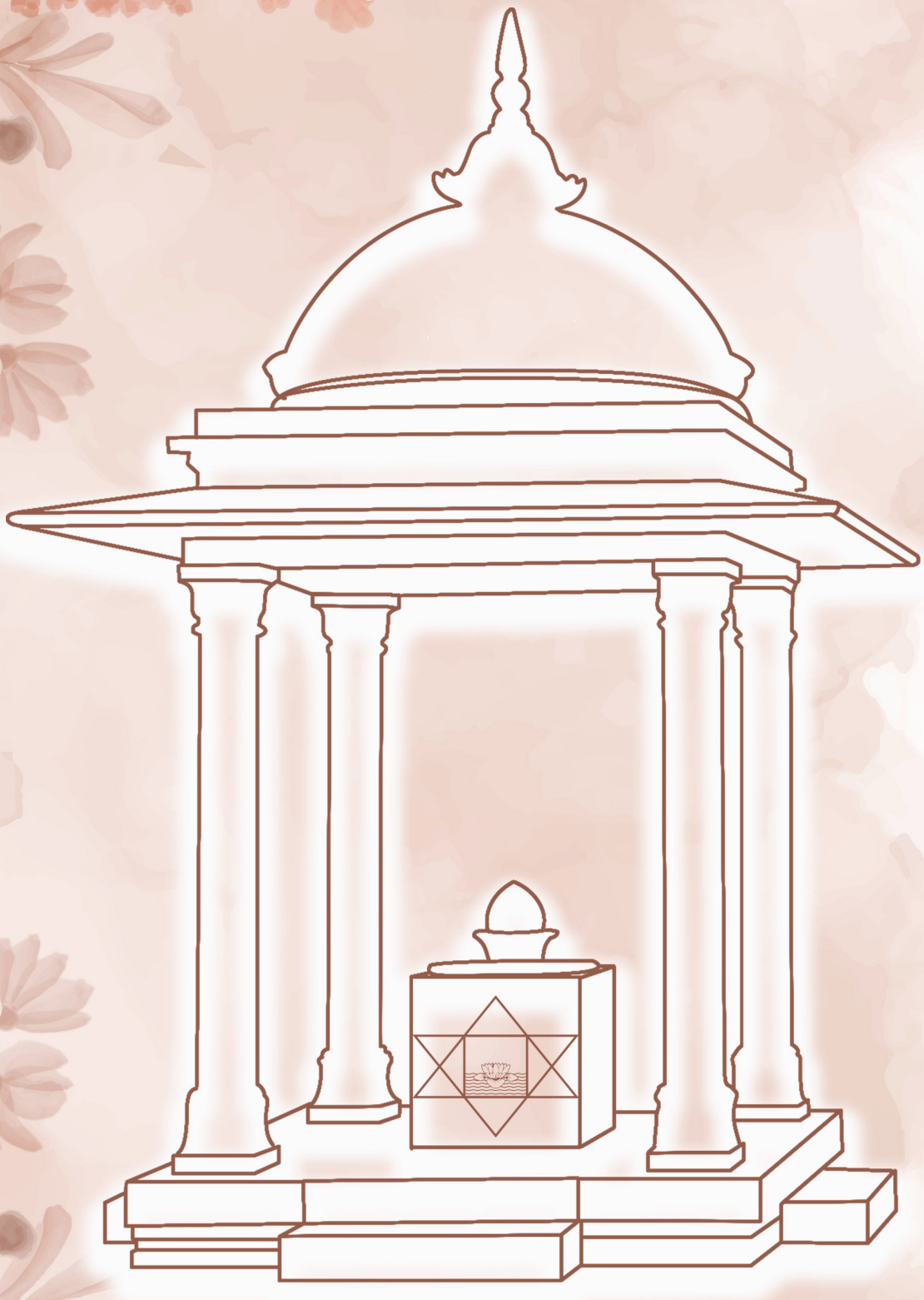

24 अप्रैल, 2021 वर्ष 51 अंक-2

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

मार्च - अप्रैल -2021

(अंक - 2)

संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

भागवत कृपा

भागवत कृपा को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को केवल एक महान अभीप्सा ही नहीं रखनी चाहिए, बल्कि सरल विनम्रता और पूर्ण विश्वास भी बनाये रखना चाहिए।

भागवत कृपा एक ऐसी चीज है जो प्राप्तव्य लक्ष्य की ओर तुम्हें आगे धकेल देती है। उसे मन के द्वारा समझने की कोशिश मत करो उससे तुम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचोगे क्योंकि वह एक ऐसी विशाल वस्तु हैं जिसकी व्याख्या मानवीय शब्दों या भावों के द्वारा नहीं की जा सकती। जब कृपा - शक्ति कार्य करती है तब उसका परिणाम या तो प्रिय हो सकता है या अप्रिय - भागवत कृपा किसी मानुषी मूल्य - महत्व का कोई विचार नहीं करती, ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य के सामान्य और ऊपरी दृष्टिकोण से उसका परिणाम संहारकारी हो। परन्तु वह व्यक्ति के लिए सर्वदा ही सर्वोत्तम होता है। वह एक मार है जो भगवान की ओर से आती है जिसमें कि मनुष्य छलांग भरते हुए प्रगति - पथ पर अग्रसर हो सके। कृपा वह वस्तु है जो तुम्हें तीव्र गति से सिद्धि की ओर ले जाती है।

श्रीमाँ

प्रार्थना और ध्यान

श्रीअरविन्द

हे माँ ! जननी राष्ट्रात्मे! भवानी माता ! अपनी पूर्ण गरिमा में प्रकट हो और हमारी वन्दना स्वीकार कर। हमें आशीर्वाद दो माँ कि हम तुम्हारी गरिमा के अनुरूप बनें। आज हम चारों ओर से क्षुद्रता, स्वार्थ और सुख - विलास की लालसा से घिर गये हैं। तुम्हारे आदर्श, तुम्हारी गरिमा, तुम्हारी महानता और तुम्हारी दिव्यता से हम इतने नीचे गिर गये हैं कि हमें तुम्हारा मनोरम रूप दिखाई नहीं देता। कभी-कभी तो सहसा हम विश्वास भी खो बैठते हैं और तुम्हारी वास्तविकता भ्रम और सन्देह बनकर सारे शरीर में पिन चुभोने लगती है। हमारे गर्त की गहराई और वहाँ के घुप्प अँधेरे का अनुमान कर सकती हो न माँ !

पर कितनी ममतामयी, कृपामयी हो तुम। तुम हमारे प्रेम में बावली बनी, यहाँ इन कष्टों के कूप में भी आने में हिचकती नहीं और अपनी ज्योति की झलक दिखाकर सांत्वना दे जाती हो।

आज हम बाहर और भीतर दोनों ओर से कितने हेय हो गये हैं। हमारा वर्तमान भूत और भविष्य के बीच कितना बड़ा अन्तराल बन गया है और हम उसमें आपादमस्तक डूब गये हैं। हमें शक्ति दो माँ कि हम अपने पूर्वजों का गौरव डूबने न दें। उनकी मर्यादा की नींव पर हम भविष्य की ऐसी अट्टालिका बनायें जिसमें त्रस्त मानवता को राहत मिल सके। हमारा भविष्य अतीत से भी महान हो और हम दोनों के बीच एक दृढ़ और प्रशस्त सेतु का काम कर सके।

हमें साहस और सदबुद्धि दो कि इस दुख की घड़ी से निकल कर तुम्हारी सेवा के योग्य बन सकें और अपने पूर्वज ऋषि मुनियों की वाणी अमृतपुत्र को चरितार्थ कर सकें और हम उठें अपने लिए नहीं, बल्कि सारी मानवता के लिए, भगवान के संकल्प को पूरा करने के लिए ।

आशीर्वाद दो माँ और हमारी वन्दना स्वीकार करो।

विषय-सूची

आश्रम गतिविधियाँ

क्रं. स.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1.	प्रार्थना और ध्यान	श्रीअरविन्द	3
2.	संपादकीय	-अपर्णा	5
3.	एक बालक की कल्पना	श्रीअरविन्द	9
4.	प्रेम और भक्ति के द्वारा साधना	द्वारिका प्रसाद गुप्ता	10
5.	24 अप्रैल दर्शन दिवस	श्रीअरविन्द	12
6.	भाव और दृढ विश्वास	संकलन	16
7.	भविष्य की राजनीतिः श्रीअरविन्द एवं श्री माँ के आलोक में	डा. जे.पी. सिंह सुलतानपुर	17
8.	श्रीअरविन्द और मानव का भविष्य	डॉ. कृष्णा शारदा	22
9.	माँ ही माँ	श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर	27
10.	श्रीअरविन्द की शिक्षा	श्रीअरविन्द	28
11.	मैं तुम्हारा हूँ	संकलन	31
12.	आश्रम गतिविधियाँ	संकलन	32

संपादकीय

पाठकों,

पत्रिका का दूसरा अंक प्रस्तुत है,सम्पूर्ण विश्व में छाए इस भीषण महामारी के फलस्वरूप मचे हाहाकार में गूँजने वाले प्रश्न को सुनती हूँ तो उत्तर स्वरूप श्री अरविंद का जीवन सामने आ खड़ा होता है,जैसे---

श्रीअरविन्द को मुम्बई के क्रांग्रेस अधिवेशन में भाषण देना था। जब मन नीरव हो, विचार ही नहीं हो तो वहाँ भाषण कैसे देंगे? उन्होंने लेले से पूछा कि अब क्या करूं? तब लेले ने उन्हें कहा, "सभा को नारायण स्वरूप मानकर मनस्कार करो और फिर बोलना। वाणी उपर से उतरेगी" और सचमुच ऐसा ही हुआ। जैसे उर्ध्व से एक के बाद एक शब्द आकर उनके अन्दर उतरते चले गए हों, ऐसा भाषण हुआ, अभी तक उनके दिए गए भाषणों में वह सर्वश्रेष्ठ रहा। इसके बाद तो उन्होंने जब कहीं भाषण दिए या लिखे, सभी उर्ध्व से आनेवाली प्रेरणा से ही दिए गए क्योंकि विचार करने वाला मन तो अब पिघल गया था।

लेले से जब अलग होने का समय आया तब श्रीअरविन्द ने उनसे साधना के विषय में मार्गदर्शन देने को कहा तब लेले उन्हें साधना सम्बन्धित सूचनाएँ देने लगे परन्तु अचानक अटक गये और उन्होंने श्रीअरविन्द से सीधे पूछा, "तुम्हें, अन्तर से कोई आदेश मिलता है?" इसके उत्तर में श्रीअरविन्द ने अपना अंतर से स्फुरित एक मंत्र की बात कही। इस पर लेले ने उन्हें सूचना देना बन्द कर दिया और कहा, "जिसने तुम्हें यह मन्त्र दिया है वे ही अब तुम्हें मार्गदर्शन देंगे। मुझे अब तुम्हें सूचनाएँ देने की कोई आवश्यकता नहीं है।" इसके बाद श्रीअरविन्द अपने अन्तरमन से से मिलने वाले मार्गदर्शन के अनुसार साधना करने लगे।

जेल में इतने अधिक कष्टों से.प्रारम्भ में उनकी भगवान के प्रति श्रद्धा डगमगा गई थी। वे भगवान को कहते, हे भगवान जो अपराध मैंने किया ही नहीं, उसकी सजा मुझे क्यों दे रहे हो? बाद में तो वे रात दिन भगवान की सतत् प्रार्थना करते रहे। तीन दिन और तीन रात सतत् उन्होंने प्रार्थना की। इसके बाद उनके हृदय में शान्ति छा गई। उन्होंने "कारावास की कहानी" नामक पुस्तिका लिखी है, उसमें उन्होंने अपने जेल जीवन के अनुभवों को लिखा है। वे लिखते हैं, "ठीक उसी समय मेरे समग्र अन्तर में एक शान्ति छा गई। मेरा पूरा शरीर शीतल हो गया। मेरे जलते हुए हृदय में सुख शान्ति और आनन्द का अनुभव हुआ। जैसे एक बालक निश्चित होकर माँ की गोद में सो जाता है, उसी तरह मैं भी जगदम्बा की गोद में सोने लगा और उस दिन से जेल के सारे दुःखों का अन्त आ गया।

जेल में आने से पहले उन्होंने भगवान से प्रार्थना की थी कि, "हे भगवान मैं तुम्हें पूर्णरूप से प्राप्त करूं।

श्रीअरविन्द के समक्ष अपना पूर्णरूप प्रगट करने के लिए, श्रीअरविन्द अकेले हो, दूसरा कोई कार्य न हो, कोई बन्धन या उत्तरदायित्व न हो, ऐसी स्थिति भगवान को चाहिए थी। और ऐसी स्थिति उस समय के संयोगों में जेल

के सिवाय कहाँ मिलती?

इसलिए भगवान उन्हें जेल में ले आए। इस विषय में श्रीअरविन्द ने लिख है, "अन्ततः परम कृपालु मंगलमूर्ति भगवान ने सर्व शत्रुओं का एक साथ अन्त करकें मेरा मार्ग खोल दिया। प्रभु ने मुझे योगाश्रम बताया और गुरू रूप में, सखारूप में उस कंगाल कोठरी में आकर प्रत्यक्ष हो गए। वह योगाश्रम अर्थात् अंग्रेजों की जेल।" इस प्रकार अब जेल की वह बन्द कोठरी श्रीअरविन्द की साधना- कुटिर बन गई।

भगवान को श्रीअरविन्द से जो तैयार करवानी थी वह पूरी हो गई। इसके बाद उनके केस में आश्चर्यजनक ढ़ंग से सब बदलाव आने लगा। सरकार तो श्रीअरविन्द को मुख्य आरोपी प्रमाणित करके उन्हें फाँसी या कालेपानी की सजा करवाना चाहती थी। सरकार ने दो सौ छः के लगभग झूठे साक्षी और चार सौ के लगभग आपत्तिजनक वस्तुएँ प्रमाण के रूप में एकत्रित कर ली थी। लेकिन अब श्रीअरविन्द को बचाने का कार्य स्वयं भगवान ने अपने हाथ में ले लिया था और बाजी पलट गई।देशबन्धु चितरंजनदास जैसे प्रखर बैरिस्टर एक भी पैसा फीस में लिये बगैर श्रीअरविन्द का केस लड़ने के लिए, श्रीअरविन्द के पास आ पहुँचे। उनको केस जीतने में सहायता हो उसके लिए श्रीअरविन्द कई मुद्दे महत्वपूर्ण प्रमाण आदि के विषय में लिखने बैठे तब भगवान ने उनसे कहा, तुम्हारे ये कागज एक तरफ रख दो, उनको सहायता करने काम मैं करूंगा। उसके बाद श्रीअरविन्द ने वकील को जानकारी देने का काम कभी नहीं किया और कोर्ट में भी हमेशा सतत् ध्यान में रहने लगे। देशबन्धु चितरंजनदास श्रीअरविन्द के केस के कागज तैयार कर रहे थे तब उन्हें कई माध्यमों से जानकारियाँ मिलने लगी, जिन्हें तैयार करने में शायद उन्हें महीनों लग जाते। फलस्वरूप श्रीअरविन्द का केस बहुत तेजी से तैयार कर सके। उनका केस अब तक नीचली कार्ट में चल रहा था, वह अब उपरी कोर्ट में चला गया। इस उपरी कोर्ट में जो अंग्रेज न्यायाधीश थे वे श्रीअरविन्द के साथ कैम्ब्रिज के किंग्स कॉलेज में पढ़ते थे। तभी से उनके मन में श्रीअरविन्द के लिए बहुत आदर था। उन्हें विश्वास था कि ऐसा स्कॉलर व्यक्ति खून नहीं कर सकता है। इस प्रकार भगवान ने श्रीअरविन्द के केस पर निर्णय देने वाला न्यायाधीश ही बदल दिया। जब उपरी अदालत में केस चला तब चितरंजनदास के तर्क इतने प्रभावशाली थे कि श्रीअरविन्द के विरूद्ध केस आधारहीन हो गया।

चितरंजनदान ने, कोर्ट में जब केस चल रहा तब के अपने अनुभव के विषय में लिखा है, जब मैं श्रीअरविन्द के बचाव में दलीलें कोर्ट में प्रस्तुत करता था, तब मैं क्या बोल रहा हूँ उसका पता मुझे भी नहीं होता था। मैं बोलने के लिए खड़ा होता था, तब मेरे दिमाग में एक वाक्य आता था, उसके बोलने के बाद दूसरा वाक्य आ जाता था। इसी तरह अन्त तक होता रहा। इस प्रकार भागवान स्वयं उनके मुख में वाणी देते रहे और वाणी इतनी प्रभावशाली थी कि अनुभवी और विद्वान न्यायाधीश ब्रीचक्रोफ्ट भी जेब से रुमाल निकालकर आँसू पोंछते रहे। इसके बाद में न्यायाधीश बीचक्रोफ्ट ने लम्बा निर्णय सुनाया, जिसमें उन्होंने श्रीअरविन्द को निर्दोष घोषित किया और जेल से मुक्त करने का आदेश दिया। इस कारण सरकार को श्रीअरविन्द को मुक्त करना पड़ा। भगवान

ने अपने कार्य के लिए श्रीअरविन्द को तैयार करना था और वह काम पूरा होते ही उन्हें जेल से मुक्ति मिल गई।

भगवान ने जेल में ही उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा था, भारत स्वतन्त्र होने वाला ही है और उसी मार्ग से जो मार्ग तुमने लिया था और इसके लिए अन्य योग्य नेता आएंगे। श्रीअरविन्द को अब इससे अधिक महान कार्य करना है। इस महान कार्य का आदेश प्राप्त करने के एक वर्ष, बाद जेल से जब वे बाहर निकले तब उनके अन्दर सब बदल चुका था। 5 मई 1908 के दिन अलीपुर जेल में गए श्रीअरविन्द 6 मई 1909 के दिन जेल में भगवान का साक्षात्कार प्राप्त किए हुए दिव्य पुरुष बनकर बाहर आए थे।

सरकार ने उन्हें फिर पकड़ने के लिए योजना भी बना ली थी। दूसरे ही दिन उसके नाम वारटं निकालना था। लेकिन उससे पहले ही गुप्त रूप से सांयकाल में श्रीअरविन्द को समाचार मिल गया कि फिर उनकी धरपकड़ होने वाली है। तब वे कर्मयोगिन् के ऑफिस में ही बैठे थे। अब क्या करें? कुछ निश्चित नहीं हो पा रहा था। तभी उके अंतर में आदेश मिला कि, ब्रिटिश इण्डिया छोड़कर चन्द्रनगर चले जाओं।

मोतीलाल राय ने श्रीअरविन्द के गुप्तवास की सभी व्यवस्था कर दी।

ब्रिटिश सरकार के आदमी उनकी खोज में चन्द्रनगर भी पहुँच गये। मोतीलाल राय ने श्रीअरविन्द को बताया कि, "अब आपके लिए चन्द्रनगर में रहना खतरनाक है।" इसलिए श्रीअरविन्द सोचने लगे कि अब यहाँ से कहाँ जाएँ, क्या करें? तभी उन्हें अन्तः करण से फिर आदेश मिला कि "पांडिचेरी जाओं"

क्या तुम जानते हो कि पृथ्वी पर हम मनुष्य किस प्रकार आए? हम कोई अचानक पृथ्वी पर नहीं आए है। मनुष्य बनने से पहले चेतना ने बहुत लम्बी यात्रा की है। पहले तो परमात्मा अकेले थे, चेतना के रूप में व्याप्त थे। तब सृष्टि अस्तित्व में नहीं था। परमात्मा ने सृष्टि सर्जन की इच्छा व्यक्त करने जड़तत्व रूप में प्रगट हुए। जड़द्रव्य में स्वयं छुपे हुए रहे। लाखों वर्षों के बाद जड़तत्व से पानी प्रगट हुआ, उसमें प्राणतत्व जागा और प्रथम अमीबा सूक्ष्म जीव उत्पन्न हुआ प्राणतत्व का विकास होते-होते असंख्य प्रकार के प्राणी अस्तित्व में आए। प्रथम जलचरप्राणी, फिर जमीन पर रहने वाले डायनासोर जैसे विराटकाय थलचर प्राणी अस्तित्व मे आए। उस समय प्राणियों में जड़तत्व अधिक था इसलिए कद बड़ा था और प्राणशक्ति कम थी। लेकिन बाद में जैसे- जैसे प्राणशक्ति विकसित होती गई, वैसे वैसे प्राणियों का कद छोटा होता गया। सिंह, बाघ, चीता, बिल्ली, जैसे प्राणी अस्तित्व में आए। लाखों वर्षों में वानर में से मनुष्य का सर्जन हुआ। प्राणशक्ति से जो चलते है वे प्राणी होते हैं और मन की शक्ति से जो चलते हैं वे मनुष्य होते हैं। और मन से ऊँची शक्ति हैं जो, वह है परमात्मा की स्वयं की शक्ति। जिसे श्रीअरविन्द ने नाम दिया है, अतिमानस शक्ति। इस अतिमानस शक्ति से जो चलते हैं वे अतिमानस- देवमनुष्य होते हैं। जैसे प्राणशक्ति से चलने वाले प्राणी से, मन की शक्ति से चलनेवाले मनुष्य बिलकुल भिन्न होते हैं, उनके शरीर भिन्न होते हैं, उनका रहन-सहन अलग होता है। पशु से मनुष्य कुछ उच्च स्तर के होते हैं,ऐसे ही मन की शक्ति से चलनेवाले मनुष्यों से, प्रभु की अतिमानस शक्ति से चलने वाले अतिमानव

उच्चतर होंगे।

ई.स.1914 की 29 मार्च की दोपहर 3 बजकर 30 मिनट पर मीरा श्रीअरविन्द से मिली थी। जैसे ही उन्होंने श्रीअरविन्द को देखा तो उसी क्षण वे पहचान गई कि यह तो वही है सुपरिचित व्यक्ति,जो ध्यान में आकर मार्गदर्शन देते थे। वही श्रीकृष्ण, वही महागुरू, वही परमात्मा जो पृथ्वी को दुःखों को दूर करने के लिओ साधना कर रहे हैं, वे यही है। उन्हें विश्वास हो गया कि अब उनका कार्य हिन्दुस्थान में इन महागुरू के साथ ही है। वे सीढ़ियाँ चढ़कर उपर गई और श्रीअरविन्द के चरणों में चुपचाप बैठ गई और गहरे ध्यान में उतर गई। इस ध्यानावस्था में उन्होंने अपनी सारी साधना, सिद्धियाँ, अपना सर्वस्व श्रीअरविन्द के चरणों में समर्पित कर दिया। स्वयं कोरे कागज के जैसी हो गई। श्रीअरविन्द ने भी कुछ भी बोले बगैर उनके समर्पण को स्वीकार करके मन में परमशान्ति से नीरवता भर दी।

दूसरे दिन प्रार्थना और ध्यान की डायरी में उन्होंने लिखा, "संसार में चाहे हजारों लोग ज्ञान और अंधकार में डूबे हुए हैं परन्तु कोई चिंता नहीं है। कल जिनका दर्शन हुआ है, वे पृथ्वी पर हैं, उनकी उपस्थिति स्वयं सिद्ध करने को पर्याप्त है। गहनतम् अंधकार भी प्रकाश में बदल जाएगा और पृथ्वी पर अवश्य हे प्रभु तेरा शासन स्थापित होगा। श्रीमाँ ने प्रथम दर्शन में ही श्रीअरविन्द के रूप में मानवजाति के दुःखों से मुक्ति के लिए साक्षात परमात्मा को साधना करते देखा था और श्रीअरविन्द ने भी माताजीके रूप में आई साक्षात माँ भगवती के रूप को देखा। दोनों का कार्य एक ही था, मानवजाति को सदा के लिए दुःखों से मुक्त करना- पृथ्वी को परमात्मा का धाम बनाना।

श्रीमाँ को लगा कि अब श्रीअरविन्द के ज्ञान का लोगों को परिचय होना चाहिए, इसलिए उन्होंने श्रीअरविन्द की सहमति लेकर "आर्य" मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। "आर्य" के द्वारा ही श्रीअरविन्द के सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। बाद में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया और फ्रान्स के कानून के अनुसार श्री रिशार और श्रीमाँ को वापस पेरिस जाना पड़ा।

ई.स. 24 अप्रैल 1920 को दूसरी बार वापस श्रीमाँ पांडिचेरी आई और श्रीअरविन्द के कार्य में सहयोगी हो गई। श्रीमाँ आई और उन्होंने श्रीअरविन्द की महत्ता का दर्शन शिष्यों को करवाया।

ईश्वर से प्रार्थना है कि हम इन विषम परिस्थितियों में उनके मन्तव्य को समझने का धैर्य धारण कर सकें और पूरी आस्था के साथ निर्भय रूप से उनके प्रति स्वयं को समर्पित कर सकें।आप सभी स्वस्थ और सानंद रहें, इसी शुभेच्छा के साथ,

-अपर्णा

एक बालक की कल्पना

श्री अरविन्द

ओ तुम स्वर्णिम प्रतिबिम्ब,
निर्मल आनन्द के लघु-रूप,
जब तुम बोलते हो मधुर और शुद्ध
एक चुम्बन योग्य तुम्हारा हर शब्द।
विचित्र, सुदुर और शोभित
बचपन की पवित्र कल्पना
आनन्द की उष्मा विचारों को करती उल्लसित,
जिसकी थाह कोई ले नहीं सकता।
जब नेत्र हो जाते हैं संजीदा
हँसी हो जाती है म्लान,
प्रबल स्वभाव उसके बचपन का
उस अतिमानवी खेल का करता स्मरण,
सूर्य किरणों से स्पर्शित काठ के जंगल
जहाँ बौने करते निवास,
दैत्य मिला करते, शैतान अभिवादन करते,
परिकल्पनाएँ एक युवा देवता की।
ये सब तुम पर छा रहे,
तुम्हारे अनकहे विचारों में,
भगवान स्मरण करते तुम्हारे अन्तर्मन में,
आश्चर्य वे सब जो उसने थे रचे।

महानिशा का तीर्थयात्री

अनुवाद – विमला गुप्ता

प्रेम और भक्ति के द्वारा साधना

श्रीअरविन्द

जहाँ तक कृष्ण के विषय में प्रश्न है, क्यों न सरल - सीधे ढंग से उनकी ओर आगे बढ़े जाए ? सरल भाव से बढ़ने का मतलब है उन पर विश्वास रखना। यदि तुम प्रार्थना करते हो तो विश्वास रखो कि वे सुनते हैं। यदि उत्तर आने में देर लगती हो तो विश्वास रखो कि वे जानते हैं और प्रेम करते हैं तथा समय का चुनाव करने के बारे में परम बुद्धिमान हैं। इस बीच चुपचाप जमीन साफ करो ताकि जब वे आयें तो उन्हें कंकड़ पत्थर और झाड़ - झंखाड़ पर लड़खड़ाना न पड़े। यही मेरा सुझाव है और जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे मैं खूब समझता हूँ - क्योंकि तुम चाहे जो कहो, मुझे सब मानवी कठिनाइयाँ और संघर्ष खूब अच्छी तरह मालूम हैं और उनका इलाज भी मुझे मालूम है। इसी कारण मैं सदा ऐसी चीजों पर जोर देता हूँ जो संघर्षों और कठिनाइयों को बहुत कम तथा छोटा कर देंगी,-आन्तरात्मिक वृत्ति, श्रद्धा, पूर्ण और सरल विश्वास तथा भरोसा। स्मरण रहे कि ये वैष्णव योग के सिद्धान्त हैं। निस्सन्देह, एक और वैष्णव पद्धति भी है जो उत्कण्ठा तथा निराशा-तीव्र स्पृहा और विरह-वेदना के बीच झूलती रहती है। तुम उसी का अनुसरण करते दीखते हो और मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि मनुष्य इससे लक्ष्य पर पहुँच सकता है जैसे वह प्रायः किसी भी विधि से पहुँच सकता है यदि वह उसका सच्चाई से अनुसरण करे। परन्तु तब,जो लोग उसका अनुसरण करते हैं वे विरह में परम प्रेमी भगवान के वियोग तथा उनकी मनमौज में भी रस अनुभव करते हैं। उनमें से कुछ ने यह पाया है कि उन्होंने अपने जीवनभर उनकी खोज की है पर सदा ही वह उनकी दृष्टि से ओझल हो गये हैं और इस चीज में भी उन्हें रस मिलता है और वे खोजना कभी नहीं छोड़ते। परन्तु तुम्हें इसमें कुछ रस नहीं मिलता। अतएव तुम मुझसे यह आशा नहीं कर सकते कि मैं तुम्हारे लिए इसका समर्थन करूँ। कृष्ण की खोज अवश्य करो, परन्तु खोजो इस दृढ़ निश्चय के साथ कि तुम अवश्य उन्हें पाओगे, विफलता की आशा लेकर खोज मत करो अथवा अधबीच मैं छोड़ बैठने की किसी भी सम्भावना को अन्दर मत घुसने दो।

मुझे कृष्ण की पूजा या वैष्णव मत की भक्ति के लिए जरा भी आपत्ति नहीं है, और न वैष्णव भक्ति और मेरे अतिमानसिक योग में कोई विरोध है। सच पूछा जाए तो अतिमानसिक योग का कोई विशेष और ऐकान्तिक रूप नहीं है सभी मार्ग अतिमानव की ओर ले जा सकते हैं, ठीक जैसे कि सभी मार्ग भगवान तक पहुँचा सकते हैं।

यदि तुम लगातार प्रयास करते रहो तो तुम जिस स्थायी भक्ति और जिस उपलब्धि को पाना चाहते हो उसे पाने में तुम असफल नहीं होगे। परन्तु तुम्हें कृष्ण पर पूर्ण रूप से यह भरोसा रखना सीखना होगा कि जब वह समझेंगे कि सब कुछ तैयार हो गया है और यथार्थ समय आ गया है तब वह उसे अवश्य देंगे। यदि वह चाहते हैं कि तुम अपनी अपूर्णताओं और अशुद्धियों को पहले दूर करो तो वह आखिरकार समझ में आने योग्य बात है। मैं नहीं समझता कि तुम इसे करने में क्यों सफल नहीं हो सकते, अब जब कि तुम्हारा ध्यान इतने सतत रूप से उसकी ओर आकृष्ट किया जा रहा है। उन्हें साफ-साफ देखना और उन्हें स्वीकार करना पहला पग है, उन्हें त्याग करने का प्रबल संकल्प बनाये रखना दूसरा पग है, उनसे अपने-आपको सम्पूर्णतः पृथक्

कर लेना जिसमें कि यदि वे प्रवेश भी करे तो यह मानो विजातीय तत्त्वों का आना हो, अब वे तुम्हारी सामान्य प्रकृति के अंग न रहें बल्कि बाहर से आने वाली सूचनाएँ हों -यह अन्तिम पग है, यहाँ तक कि, एक बार देखे जाने और त्यागे जाने के बाद वे अपने - आप झड़ जा सकती और विलीन हो सकती है, परन्तु अधिकांश लोगों के लिए इस प्रकिया में काफी समय लगता है। ये चीजें तुम्हारी प्रकृति की ही अनूठी बातें नहीं है, ये विश्व - व्यापी मानव प्रकृति के अंग हैं पर वे विलीन हो सकती हैं, अवश्य होती हैं और अवश्य होंगी।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1983

इस बात की गाँठ बाँध लो कि श्रीमाँ के ऊपर पूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ों तो चाहे जैसी परिस्थिति और कठिनाई हो, चाहे जितना समय लगे, तुम निश्चित रूप से लक्ष्य तक पहुँच पाओगे, कोई बाधा, विलम्ब या विपरीत स्थिति अन्तिम सफलता को बिगाड़ न पायेगी।

- श्रीअरविन्द

24 अप्रैल दर्शन दिवस

द्वारिका प्रसाद गुप्ता

दर्शन दिवस श्रीअरविन्द आश्रम के जीवन तथा श्रीअरविन्द के अनुयायियों के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मुख्य रूप से वर्ष की चार तिथियों को दर्शन दिवस के रूप में श्रीरविन्द तथा श्रीमाँ के समय से ही मनाया जाता रहा है। ये हैं -श्रीमाँ का जन्म दिन 21 फरवरी, श्रीमाँ के अन्तिम रूप से पांडिचेरी में आगमन का दिन 24 अप्रैल, श्रीअरविन्द का जन्म दिवस 15 अगस्त और श्रीअरविन्द के योग का सिद्धि दिवस: 24 नवम्बर। इन सभी दर्शन दिनों पर श्रीमाँ-श्रीअरविन्द आश्रमवासियों और बाहर से आने वाले अन्य भक्तों - अनुयायियों को दर्शन - आशीर्वाद दिया करते थे। साधकों, भक्तों और अनुयायियों का कहना है कि ऐसे अवसरों पर आश्रम का वातावरण विशिष्ट भागवत उपस्थिति से आवेशित हो जाता है और उनकी साधना में इससें काफी सहायता मिलती है। इसलिए इन विशिष्ट दिनों की इनके भक्त और अनुयायी बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं। आज भी जब कि श्रीअरविन्द और श्रीमाँ अपने भौतिक आवरण में नहीं रहे, वे उनके कक्षों की एक झलक और वहाँ की वायु का श्वास ही लेकर अपने को धन्य समझते हैं। ऐसे ही विशिष्ट दिनों में आश्रम के चार दर्शन दिनों में एक है चौबीस अप्रैल। क्या है इसका महत्व? किन विशिष्ट घटनाओं, अनुभवों, विचारों, भावनाओं से जुड़ा है यह शुभ दिवस?

इसी शुभ मुहूर्त को 1920 में श्रीमाँ पांडिचेरी स्थित श्रीअरविन्द के साथ उनके दिव्य कर्म में सहयोग देने, उनके योग का यंत्र बनने और श्रीअरविन्द की अर्न्तदृष्टि के अनुसार एक अतिमानसिक जगत के निर्माण में सहयोग देने के लिए स्थायी रूप से आ गईं।

पर कौन थीं श्रीमाँ, वे कहाँ से आईं?

श्रीमाँ फ्रांस की रहने वाली थीं। उनके विषय में विशिष्ट रूप से ज्ञातव्य यह है कि वे उच्च कोटि की एक संगीतज्ञ और चित्रकार होने के साथ - साथ बहुत बड़ी गुह्य वैज्ञानिक और योगी भी थीं। उन्होंने योग साधना का अभ्यास बाल्यकाल से ही किया था और अल्जीरिया के बहुत बड़े योगी थियों के साथ गुह्य ज्ञान का भी अभ्यास किया था। हम कह सकते हैं कि योग साधना का अब तक प्रचलित अर्थों में जो भी सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त था वह श्रीमाँ को सिद्ध हो चुका था। फिर भी उन्हें लगता था कि यहीं सब कुछ नहीं हैं, कुछ अप्राप्य अब भी है, जो प्राप्य होना चाहिए और तभी...।

एक बात और श्रीमाँ की या तो ध्यानावस्था में या स्वप्नावस्था में बड़े - बड़े योगियों और सिद्धों से भेंट हुआ करती थी और

वे उनसे मार्ग दर्शन लिया करती थीं।

यह भी जान लेना प्रासंगिक होगा कि श्रीमाँ जीवन क्षेत्र या पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा वैश्व जीवन से अलग-थलग संन्यासी का जीवन नहीं बिता रही थीं। वे विवाहिता थीं और उनका अपना परिवार था। लेकिन परिवारिक जीवन की अनिवार्यताओं का सम्पादन करते हुए भी इन्होंने एक असाधारण चेतना व प्रकाश का शिखर उपलब्ध कर लिया था और इनके साधारण कार्य भी उसी चेतना से संचालित होते थे।

पेरिस के एक सम्पन्न सम्भ्रात परिवार में 21 फरवरी 1878 में मीरा अल्फांसा के नाम से उत्पन्न एवं पालित - पोषित यह असाधारण महिला अपने जीवन के 36 वें बसन्त पर एक निर्णायक मोड़ पर खड़ी थी कि तभी परिस्थितियों ने एक नाटकीय मोड़ लिया। मिरा अल्फांसा के पति श्री रिशा पॉल फांसिसी संसद के निर्वाचन के सिलसिले में भारत में फ्रांसिसी राज्य पांडिचेरी आ रहे थे। मिरा ने उन्हें एक तंत्र चिह्न विशेष का, जिसमें त्रिभुज एक अधोगामी और दूसरा उर्ध्वगामी, एक दूसरे को अन्तरवेशित करते हैं, गूढ़ार्थ जानने के लिए किसी भारतीय योगी से भेंट करने का अनुरोध किया था।

संयोग अथवा दैवयोग से श्रीअरविन्द पांडिचेरी में रह रहे थे। रिशा पाल थे फ्रेंच साहित्य के मर्मज्ञ, दार्शनिक व कवि। श्रीअरविन्द थे पाश्चात्य संस्कृति, इतिहास, दर्शन के समीक्षक और अग्रेंजी, फ्रेंच, ग्रीक, लैटिन के विद्वान , कवि, महान द्रष्टा और योगी। दोनों दो भूले भटके मित्र की तरह मिले। दोनों घने मित्र हो गये। मिरा का प्रश्न भी पूछा और मिरा तक श्रीअरविन्द का उत्तर भी पहुँच गया।

जब रिशा पाल पेरिस वापस गये तो उनसे मिरा ने श्रीअरविन्द के विषय में जो कुछ सुना उससे वे श्रीअरविन्द से मिलने को आतुर हो गई। वे रिशा पाल को लेकर 29 मार्च को पांडिचेरी पहुँचीं और उसी दिन अपराह्न साढ़े तीन बजे श्रीअरविन्द और मिरा अल्फांसा पहली बार एक दूसरे से मिले।

'अरे यह क्या' ? मिरा अल्फांसा की आत्मा मानो आश्चर्य और आह्लाद से पुकार उठी, 'ये तो वही हैं, चिर - परिचित जो मेरे स्वप्न में प्रतिदिन आते हैं, मेरे स्वामी, मेरे कृष्ण।'श्रीअरविन्द की शान्त रहस्यमयी मन्द - मन्द मुस्कान ने मिरा का स्वागत किया।

मिरा स्वयं एक उच्च कोटी की योगी थीं, फिर भी वे श्रीअरविन्द की उपस्थिति से बहुत अभिभूत हो गईं। उन्होंने श्रीअरविन्द के साथ हुई पहली भेंट के अनुभव के बार में अपनी डायरी में लिखा-

"जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा, यह जानने में देर नहीं लगी कि वे ही हमारे सुपरिचित 'कृष्ण' हैं और तब मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि मेरा स्थान और मेरा कार्य उनके साथ भारत में है।"

अगले दिन 30 मार्च की डायरी में उन्होंने लिखा-

"कोई बात नहीं यदि हजारों - लाखों घोर अन्धकार में डूबे हुए हैं। जिन्हें हमने कल देखा है, वे इस पृथ्वी पर हैं। उनकी उपस्थिति यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि एक दिन आयेगा जब कि अन्धकार प्रकाश में बदल जाएगा और तेरा राज्य पृथ्वी पर स्थापित हो जाएगा।

श्रीमाँ ने श्रीअरविन्द से पहली भेंट से सम्बन्धित एक और रहस्यमय विचार व्यक्त किया जिसे हम 'राधा की प्रार्थना' के नाम से जानते हैं-

"ओ तू, जिसे पहले ही दृष्टिपात में अपनी सत्ता का स्वामी और अपने भगवान के रूप में पहचान लिया, तू मेरी भेंट स्वीकार कर।

"मेरे सब विचार तेरे हैं, मेरी सब भावनांए, मेरे हृदय के सब आवेग तेरे हैं, मेरे सब संवेदन, मेरे जीवन की सम्पूर्ण गतिविधि तेरी है, मेरे शरीर का एक -एक अंग, मेरे रूधिर का एक - एक बूद तेरी है। मैं सर्व भाव से और समग्र रूप में तेरी हूँ। बिना कुछ भी बचाये निःशेष भाव से तेरी हूँ। मेरे लिए तू जो कुछ चाहेगा, मैं वही होऊँगी। मेरे लिए तू जीवन चुने या मरण ,हर्ष लाए या शोक, सुख दे या दुःख, जो कुछ भी तेरी ओर से मुझे मिलेगा वह सब शिरोधार्य होगा। तेरी प्रत्येक देन मेरे लिए सदा ही अपने साथ परम आनन्द लाने वाली दिव्य देन होगी।"

श्रीअरविन्द के लिए श्रीमाँ का, प्रथम भेंट में ही बिना किसी बौद्धिक विचारों के सम्पूर्ण निवेदन – समर्पण श्रीअरविन्द के असाधारण और रहस्यमय व्यक्तित्व की ओर संकेत करता है। क्या श्रीअरविन्द का व्यक्तित्व इतना विशाल, विराट और मुग्धकारी था कि श्रीमाँ को अपना सर्वस्व उनके चरणों में न्योछावर कर देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

यह तथ्य और भी औचित्यपूर्ण तब लगता है जब हम देखते हैं श्रीमाँ पाश्चात्य संस्कृति अथवा पदार्थ - संस्कृति में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है उसे और जो अपने - आप में लघृताओं, सीमाओं, त्रुटियों को अति - क्रमिक करने की संभावना छिपाये है - उन दोनों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस संस्कृति ने यदि अपूर्णताओं का संत्रास झेला है तो इसलिए कि इसने पदार्थ में निर्वतित परम चेतना को झूठलाया है। पूर्व भी इस संत्रास से अछूता नहीं रहा हैं क्योंकि इसने भी तो परम सत्य के उतने ही सत्य पक्ष - पदार्थ को नकारा है। दोनों ही नेतियाँ पूर्ण सत्य की नकार हैं।

प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन ही सम्पूर्ण सत्य हैं। स्पिरिट और मैटर का सन्तुलित गुम्फन ही सम्पूर्ण सत्य को व्यक्त करने में सक्षम हो पायेगा। प्रकृति और पुरुष इसी पग की तैयारी में लगे हैं।

द स्पिरिट शैल लुक आउट फ्रोम द मेटर्स गेज़

इस परिप्रेक्ष्य में 24 अप्रैल श्रीअरविन्द और श्रीमाँ का स्प्रिट और मैटर का, पूर्व और पश्चिम का, पुरुष और प्रकृति का स्थायी मिलन एक नये युग, एक नूतन सृष्टि और चेतना की यात्रा में एक नये महत आरोहण का प्रतीक है। इसी सन्दर्भ में इस दिवस की महत्ता को सच्चे अर्थों में समझा जा सकता है।

मा प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।

गुहां प्रविश्य तिष्ठान्तीं या भूतेभिर्व्यजात।

ए तद्वैतत्।

यह देवताओं की माता अदिति हैं जो कि तत्वों के योग से उद्भूत हुई हैं और प्राण के द्वारा प्रकट हुई हैं। वह वस्तुओं की गहन गुफा में प्रविष्ट कर प्रतिष्ठित हो गयी हैं। यह वही हैं जिन्हें तुम खोज रहे हो।

परम सत्य के दो मुख्य पक्ष है - प्रज्ञा और प्रेम, ज्ञान और शक्ति। भागवत संकल्प का आभास परम प्रज्ञा और ज्ञान के बिना सम्भव नहीं हो सकता। उन्होंने एक ऐसे छिपे सत्य की ओर मानव मनीषा का ध्यान आकृष्ट किया है जो अभी तक किसी धर्म के किसी अवतार और पैगम्बर को मालूम न था। उन्होंने दावा किया है कि अतिमानस का ज्ञान और अनुभव किसी धर्म को

ज्ञात नहीं है इसलिए किसी धर्म ने भी इस सत्य की ओर संकेत नहीं दिया है। इसलिए श्रीमाँ ने जो कुछ इनके विषय में कहा है उससे यही संकेत मिलता है कि वे स्वयं परात्पर के अंश हैं, वे स्वयं परम पुरुष हैं। और श्रीमाँ स्वयं उनकी दिव्य शक्ति और परा प्रकृति हैं जो भागवत संकल्प को इस जगत में कार्यान्वित करने के लिए अवतरित हुई हैं। श्रीअरविन्द ने इनका परिचय देते हुए 'माता' नामक पुस्तक नें साफ कहा है कि जिन्हें हम श्रीमाँ के रूप में पूजते हैं, वे भागवत चेतना के ही साकार- जीवन्त मूर्ति हैं। वे ही वेद वर्णित देवों की माता अदिति हैं। वे भगवान की सर्जनात्मक शक्ति हैं। भगवान की दिव्यता को मानव चेतना में यही कार्यान्वित करती हैं। श्रीअरविन्द ने यह स्वीकारा है कि यदि माताजी -मानव शरीर धारण नहीं करतीं तो मेरी अतिमानसिक अनुभूति पार्थिव चेतना में रूपान्तर के लिए उपयोगी नहीं बन पाती। नये सृजन के लिए श्रीअरविन्द और श्रीमाँ पुरुष और प्रकृति के ही मानवी रूप लेकर आये हैं। क्योंकि इसके बिना नवीन चेतना का अवतरण अथवा नूतन सृष्टि या धर्म की प्रतिष्ठा अथवा देवत्व की ओर प्रकृति का अगला आरोहण मानव चेतना और सामर्थ्य के बाहर की बात है।

"इस शाश्वत सृष्टि में प्रत्येक अवतार केवल उद्घोषक होता है, एक अधिक पूर्ण भावी सिद्धि का अग्रसर। फिर भी लोगों में भावी अवतारों के विरूद्ध अतीत के अवतारों में देवत्व आरोपित करने की प्रवृति होती है। अब पुनः श्रीअरविन्द संसार को कल की सिद्धि की घोषणा करने आये हैं तो पुनः उनके संदेश का वैसा ही विरोध हो रहा है जैसा उनके पूर्ववर्ती अवतारों का।"

और अन्त में श्रीमाँ का बहुत ही निर्णायक वक्तव्य जो श्रीअरविन्द और उनकी अपनी दोनों की सच्ची स्थिति के रहस्य के द्वारा खोल देता है-

उस बिन मम अस्तित्व नहीं

मुझ बिन वह अभिव्यक्त नहीं

यों तो श्रीमाँ के ये वक्तव्य श्रीअरविन्द की स्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं फिर भी यदि दिव्य चक्षु के अभाव में यह अपनी शुद्ध प्रज्ञा से देखें तब भी हमें यह समझने में देर नहीं लगेगी कि श्रीअरविन्द मानवीय धरातल पर शाश्वत का प्रतिनिधित्व करने आये हैं। जो मेधा भागवत संकल्प का उद्घोष करती है, जो प्रज्ञा और चेतना भागवत योजना और स्रष्टा के विधान को जानती है, जो मनीषा प्रकृति के अगले पड़ाव – दिव्य जीवन के भूदृश्य का व्याख्यान करती है - वह निश्चित ही शाश्वत सत्य और चेतना की ही हो सकती है।

पूर्व प्रकाशित (कर्मधारा-1993)

भाव और दृढ विश्वास

सन्त रामदास जी जब प्रार्थना करते थे तो कभी उनके होंठ नही हिलते थे।

शिष्यों ने पूछा - हम प्रार्थना करते हैं, तो होंठ हिलते हैं। आपके होंठ नहीं हिलते ? आप पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े हो जाते हैं। आप कहते क्या है अन्दर से?

क्योंकि, अगर आप अन्दर से भी कुछ कहेंगे, तो होंठो पर थोड़ा कंपन आ ही जाता है। चेहरे पर बोलने का भाव आ जाता है। लेकिन वह भाव भी नहीं आता।

यह सुनकर सन्त रामदास जी ने कहा - मैं एक बार राजधानी से गुजरा और राजमहल के सामने द्वार पर मैंने सम्राट को खड़े देखा, और वहीं एक भिखारी को भी खड़े देखा। वह भिखारी बस खड़ा था। फटे-चीथड़े थे उसके शरीर पर। जीर्ण - जर्जर देह थी, जैसे बहुत दिनों से भोजन न मिला हो, शरीर सूख कर कांटा हो गया। बस आंखें ही दीयों की तरह जगमगा रही थी। बाकी जीवन जैसे सब तरफ से विलीन हो गया हो। वह कैसे खड़ा था यह भी आश्चर्य था? लगता था अब गिरा - तब गिरा !

सम्राट उससे बोला - बोलो क्या चाहते हो ?

उस भिखारी ने कहा - अगर आपके द्वार पर खड़े होने से मेरी मांग का पता नहीं चलता, तो कहने की कोई जरूरत नहीं। क्या कहना है और ? मैं द्वार पर खड़ा हूं, मुझे देख लो मेरा होना ही मेरी प्रार्थना है। "

सन्त रामदास जी ने कहा - उसी दिन से मैंने प्रार्थना बंद कर दी। मैं परमात्मा के द्वार पर खड़ा हूँ। वह देख लेगें । मैं क्या कहूं?

अगर मेरी स्थिति कुछ नहीं कह सकती, तो मेरे शब्द क्या कह सकेंगे ? अगर वह मेरी स्थिति नहीं समझ सकते, तो मेरे शब्दों को क्या समझेंगे?

अतः भाव व दृढ़ विश्वास ही सच्ची परमात्मा की याद के लक्षण है, यहाँ कुछ मांगना शेष नहीं रहता ! आपका प्रार्थना में होना ही पर्याप्त है।

भविष्य की राजनीतिः श्रीअरविन्द एवं श्री माँ के आलोक में

डॉ. जे.पी. सिंह
चेयरमैन
श्रीअरविन्द सोसाइटी
उत्तर प्रदेश/ उत्तराखण्ड

आज 'भविष्य की राजनीति श्रीअरविन्द एवं श्री माँ के आलोक में, चर्चा करना समीचीन होगा। हमारे देश की राजनैतिक स्वतंत्रता श्रीअरविन्द के जन्मदिन 15 अगस्त को प्राप्त हुई, जो महज एक संयोग नहीं था बल्कि जिस उद्देश्य को लेकर उनका जन्म हुआ था उस उद्देश्य की पूर्ति कर डिवाइन ने इस पर मुहर लगा दी है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि स्वाधीनता पाना आसान कार्य है, पर उसे बनाये रखना उतना आसान नहीं है। स्वाधीनता बनाये रखने के लिए एक संयुक्त संघटित तथा स्थायी शक्ति की आवश्यकता है। इसके लिए भारत को अपनी बिखरी शाक्तियों को एकमेव और अप्रतिरोध्य पूर्ण इकाई में संघटित करना होगा।

भारत की एक मात्र राजनीति अध्यात्म है। सनातन धर्म का पूरी तरह से पालन करना एक मात्र स्वराज्य है।

भारत के लिए उपयुक्त शासन प्रणाली के विषय में श्रीअरविन्द के दृष्टिकोण के अनुसार - भारतीय प्रणाली जीवन की भावनाओं के उपादान से वर्धित हुई इसमें हर पसन्द के लिए स्थान था। इसमें राजतन्त्र, अभिजात – तन्त्र एवं प्रजातन्त्र था। प्रशासन में प्रत्येक पसन्द का प्रतिनिधित्व था। जबकि पाश्चात्य प्रणाली मानसिक विचारों के उपादान से फली फूली। यूरोप में वे बुद्धि द्वारा निर्देशित होते हैं और यूरोपीय हर चीज को स्वाधीनता की या विविधता की कोई गुंजाइश के बिना नपा - तुला बनाना चाहते हैं। यदि यह प्रजातन्त्र है तो केवल प्रजातन्त्र, अन्य किसी चीज के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। वे लोचदार नहीं हो सकते।

लेकिन हम इस समय संसदीय काल से गुजर रहे हैं और हमें गुजरना ही होगा ताकि हम व्यवहार में यह देखकर कि यह राष्ट्रों को सौभाग्यशाली बनाने में कितना असमर्थ है, पश्चिमी प्रजातन्त्र की धारणा से मुक्त हो सकें। एक प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द ने भारत के आदर्श प्रशासन के विषय में कहा था कि इसके बारे में मेरी अवधारणा टैगोर की तरह है। सबसे ऊपर एक राष्ट्रपति हो जिसके पास यथेष्ट अधिकार हों, जिससे नीति को सुरक्षित रखा जा सके और राष्ट्र के प्रतिनिधित्व के साथ एक लोकसभा हो। प्रान्तों में सबसे ऊपर एक संयुक्त संघ हो तथा स्थानीय निकायों में उनकी स्थानीय समस्याओं में अनुकूल कानून बनाने के लिए पर्याप्त अवकाश हो।

हम एक राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहे हैं, यह हमें राष्ट्रीय सरकार बनाने की दिशा में प्रेरित कर रही है।

एक महत्वपूर्ण बात श्रीअरविन्द ने कहा है कि Partyless Democracy (दलविहीन) का एक स्वरूप विकसित होना चाहिए। देश को कठिनाई से उबारने के लिए उन्होंने समाधान दिया था - और यह राजनीति के ऊपर है। राजनीति से परे देश को व्यवस्थित करना है। राजनीति में लड़ाई, हमेशा भद्दी लड़ाई होती है। हम एक ऐसे युग में पदार्पण कर रहे हैं जहाँ चीजों को भिन्न तरीकों से व्यवस्थित करना होगा।

राजनीति हमेशा दलबन्दी से, विचारों से और कर्तव्यों से भी सीमित होती है - जब तक कि ऐसी सरकार न बनायें जिसमें कोई दल न हो, ऐसी सरकार जो सभी विचारों को स्वीकार करे क्योंकि वह दलबन्दी से ऊपर है। दलबन्दी की हमेशा एक सीमा होती है। यह एक बक्से की तरह है जिसमें हम बन्द हो जाते हैं। निश्चय ही यदि कुछ ऐसे लोग होते जो बिना किसी दल के सरकार में रहने का साहस करते - "हम किसी दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते - हम भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं" तो चीजें अद्भुत होतीं। श्री माँ ने कहा, चेतना को ऊपर उठाओ,, ऊपर दलबन्दी से ऊपर। फिर स्वभावतः कुछ लोग राजनीतिक दल में नहीं आ सके वे यही हैं, आगामी कल के लिए काम करने वाले। आगामी कल में ऐसा ही होगा। यह सारा संघर्ष इसलिए है क्योंकि देश को आगे बढ़ाना है, इन सभी पुरानी आदतों से ऊपर उठना है। बिना किसी दल की सरकार।

भारत में राष्ट्र की धारणा अपने सभी क्षेत्रों में जिस आधार पर स्वयं को संसिद्ध करेगी, उसे संघीय प्रणाली कह सकते हैं। यहाँ के सभी समुदाय अपने अपने आदर्शों तथा प्रथाओं के प्रति भक्ति, समुदाय की अन्य विधाओं के आदर्शों तथा प्रथाओं के प्रति सहिष्णुता तथा सम्मान का भाव, सबके लिए समान नागरिक जीवन तथा आदर्श के प्रति उत्कट प्रेम और स्नेह, वास्तविक भारतीय राष्ट्र के लिए हमें इन सबका संवर्धन अभी करना होगा।

केवल भारत की आत्मा ही इस देश को एक कर सकती है। ब्राह्य रूप में भारत के प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषा सभी की दृष्टि से बहुत अलग अलग हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का प्रयत्न केवल विपत्तिजनक परिणाम ला सकता है। लेकिन उसकी आत्मा एक है। भारत का कर्त्तव्य है कि अपनी आत्मा को फिर से पाना और अभिव्यक्त करना। माता जी ने कहा था कि आत्मा को पाने के लिए अपने चैत्यपुरूष के बारे में सचेतन होना है। तत्पश्चात चैत्यपुरुष भारत की आत्मा में तीव्र रस ले और उसके लिए सेवा - वृत्ति से अभीप्सा करे।

हमें अपने सामाजिक ढाँचे, शिष्टाचार, प्रथाओं में वैसी हर चीज को सतर्कता पूर्वक संजोकर रखना चाहिए जो स्थायी मूल्य की हो, हमारी भावना के लिए अनिवार्य हो अथवा भविष्य के लिए आवश्यक हो। किन्तु विकसनशील एवं आक्रामक भावना को उन अल्पकालिक ढ़ाँचों में सीमित नहीं रखना होगा जो विगत कुछ शताब्दियों में ढले हैं।

समाज में हमें राजनीतिक बोध को जगाना चाहिए। यह जनता का युग है, बहुसंख्या का, प्रजातन्त्र का युग है। यदि कोई राष्ट्र आधुनिक संघर्ष में जीवित रहना चाहता है तो उसे जनता को जागृत करना होगा और उसे राष्ट्र की सचेतन जीवनधारा में लाना होगा जिससे प्रत्येक व्यक्ति यह महसूस कर सके कि वह राष्ट्र का निवासी है, राष्ट्र की प्रगति के साथ वह प्रगति करता है और राष्ट्र की स्वाधीनता में वह स्वाधीन है। यह कार्य पुनः ग्राम समिति पर निर्भर करता है। जब तक हम ग्रामीण जीवन में एकता का संगठन नहीं करते, तब तक शिक्षित वर्ग और जनसाधारण के बीच की खाई को नहीं पाट सकते।

विकेन्द्रीकरण तथा ग्राम्य जीवन के बारे में श्रीअरविन्द ने कहा है कि यह यूरोपीय धारणा है कि संसदीय प्रणाली अथवा

संसदीय संविधान सर्वोत्तम है। प्राचीन भारत में हमारे यहाँ सामुदायिक स्वतन्त्रता बहुत थी औ समुदाय सत्ता और राष्ट्रीय जीवन के केन्द्र थे। राजा समुदाय के अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता था। यदि इन अधिकारों के साथ हस्तक्षेप किया जाता तो जनता अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती थी। यह हमारे राष्ट्र की प्रतिभा का कमाल था जिसने ऐसी पद्धति विकसित कर ली थी।

भारत मूलतः ग्रामों का देश है, बहुत ही विशाल देश है। दे-भक्ति अपनी प्रकृति में सात्विक है जबकि राष्ट्रीय चेतना राजसिक है। जो व्यक्ति अपने अहं को देश के अंह में विलीन कर सकता है, वह आदर्श देश भक्त हैं। जो देश के अहं को विवर्धित करता है पर अपने अंह को भी सुरक्षित बनाये रखता है, वह राष्ट्रीय चेतना से युक्त व्यक्ति है। शुरू के युग में भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। यदि पूर्ण राष्ट्रीय चेतना देश में सर्वत्र फैल जाये तब इस देश में विभाजन से ग्रस्त होते हुए भी एकता सिद्ध की जा सकती है।

राष्ट्रीय चेतना की आवश्यकता पूरी होने के बाद हमें देखना है कि किस तरह से राष्ट्रीय एकता देश में लायी जाय। हमारे देश में एकता पहले कभी नहीं थी, किन्तु हमेशा एकता की ओर खिंचाव था, प्रभाव था। किसी भी प्रकार की एकता में भिन्न-भिन्न भागों को जोड़ने की ओर एक प्रयास था। इस स्वाभाविक प्रयास में कुछ बड़ी बाधायें थीं। पहली, प्रान्तीय भिन्नताएं, दूसरी हिन्दू मुस्लिम संघर्ष, तीसरी देश के प्रति मातृ- दृष्टि का अभाव, इसका विशाल क्षेत्र, संचार में बिलम्ब तथा भाषाओं में अन्तर- ये थे प्रान्तीय अलगाव के कुछ प्राथमिक कारण। आधुनिक विज्ञान के वरदान से अन्तिम कारण को छोड़कर शेष का पृथक्कारी प्रभाव समाप्त हो गया है।

जिस दिन हम लोग भारत माँ के सौन्दर्य तथा महिमा से प्रभावित होकर उनकी सच्ची अविभाज्य प्रतिमा के दर्शन कर लेंगे उस दिन हम उत्सुकता से अपने जीवन को उनकी सेवा में न्योछावर कर देंगे। तब यह बाधा दूर हो जाएगी और भारत की एकता, स्वाधीनता तथा प्रगति की सिद्धि अधिक आसान हो जाएगी। भाषा की बाधा तब विभाजित नहीं कर पायेगी। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार कर साथ ही अपनी क्षेत्रीय भाषा को यथोचित सम्मान देकर हम इस कमी को पूरा कर लेगें। हम हिन्दू-मुस्लिम विरोध का सच्चा समाधान पाने में सफलता प्राप्त कर लेगें। देश के प्रति मातृ- दृष्टि के अभाव में इन बाधाओं को दूर करने की सबल प्रेरणा कभी महसूस नहीं की गयी। अभी हमें जिस चीज की आवश्यकता है वह है एक सच्चे और अविभाजनीय देश की धारणा।

1969 में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री माताजी से मिलने पाण्डिचेरी आई थीं। माताजी ने उन्हें एक विशेष संदेश दियाः

1 - भारत भविष्य के लिए काम करे और सबका नेतृत्व करे। इस तरह वह जगत् में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

2 - बहुत पहले से यह आदत चली आयी है कि विभाजन और विरोध के द्वारा शासन किया जाए। अब एकता, परस्पर समझौते और परस्पर सहयोग के द्वारा शासन किया जाए।

3 - सहयोगी चुनने के लिए वह जिस दल का है उसकी अपेक्षा मनुष्य सहयोग के द्वारा शासन किया जाए।

4 - सहयोगी चुनने के लिए वह जिस दल का है उसकी अपेक्षा मनुष्य का मूल्य ज्यादा महत्वपूर्ण है।

5 - राष्ट्र की महानता अमुक दल की विजय पर नहीं, बल्कि सभी दलों की एकता पर निर्भर है

भारत की विदेश नीति सम्बन्धी विचार के सम्बन्ध में श्रीअरविन्द ने कहा था कि भारत को सीमाओं के पार से खतरा

है, विशेषकर चीन से। कम्युनिस्ट चीन के आविर्भाव से एशिया में एक अधिक खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो गयी है जो विश्व में इस भाग के देशों की महादेशीय एकता की किसी भी संभावना के मार्ग से प्रचण्ड रूप से बाधक है। यह तथ्य अप्रैल 1950 के संस्करण (द आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी) में जोड़ा गया। अक्टूबर, 1950 में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया तथा अक्टूबर 1962 में उसने भारत की उत्तरी सीमा पर धावा बोल दिया।

श्रीमाँ ने कहा, देखो मनुष्य कितनी विभीषिकाएँ कर सकता है, उसकी सीमा होती है, क्योंकि हर चीज के बावजूद पीछे एक चैत्य सत्ता होती है, जो उन्हें रोकती है, किन्तु चीनियों के पास वह नहीं है, और वे लोग अत्यन्त कुशाग बुद्धि वाले हैं।

भारत - पाकिस्तान विभाजन के बारे में श्रीअरविन्द ने कहा है कि यह एक अस्थायी विभाजन है और इसका जाना अनिवार्य होगा। आधुनिक राजनीति का वातावरण अविश्वास से भरा हुआ है हर कार्य के मूल में एक प्रच्छन्न पारस्परिक संदेह और घृणा का भाव रहता है। इसके भौतिक दिखाई देते सभ्यता के बाहरी तामझाम के नीचे एक गंभीर नैतिक रोग यूपोपीय समाज के प्राण तत्त्व को निगलता जा रहा है जिसके हजारों लक्षण स्पष्ट हैं। यदि भारत यूरोप के पद चिन्हों पर चलता है तब वह भी उन्हीं रोगों का शिकार बन जाएगा। ऐसी परिणिति न भारत के लिए और न युरोप के लिए अच्छी होगी। यदि भारत यूरोप का भौतिक प्रान्त बन जाएगा, तब वह अपनी स्वाभाविक महानता को कभी उपलब्ध नहीं कर पायेगा।

पर धर्मो भयावह, दूसरे के धर्म को स्वीकार करना संकटपूर्ण होगा। भारत को भारत ही रहना होगा। यदि उसे अपनी निर्दिष्ट भूमिका का पालन करना है।

आदरणीय जेल अधीक्षक, जेल के सभी कर्मी एवं कैदी भाइयों, आज, हम यहाँ आपके बीच में अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक संस्था श्रीअरविन्द सोसाइटी से आये हैं। इसका हेड आफिस पुदुच्चेरी में है जहाँ पर आप जिनका फोटो देख रहे हैं, श्रीअरविन्द एवं श्रीमाँ का। उन्होंने जीवन के बहुत वर्ष साधना करके पूरी पृथ्वी के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया और हमें यह बताया है कि जीवन में किसी भी स्थल पर रहकर भगवान से जुड़ा जा सकता है। उसके बहुत सारे उद्देश्य हैं जिसकी चर्चा हम फिर कभी करेंगे।

मेरे विचार से आप में बहुत सारे लोगों ने श्रीमाँ एवं श्रीअरविन्द के बारे में पढ़ा या सुना होगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः आप लोगों में ऐसे लोग ही होंगे जो या तो आवेश में गलती कर गये होंगे अथवा किसी गलत फहमी का शिकार हुए होंगे या कुछ लोग यहाँ निर्दोष भी होंगे किसी ईर्ष्या आदि के कारण फंसा दिये गये हैं। जेल में आना नियम की दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता और आप लोगों को भी यह अच्छा नहीं लग रहा होगा। लेकिन नियम तो नियम है, वह अपना काम करेगा जिस तरह से रोबोट काम करता है उसमें कोई संवेदना नहीं होती। आपने शायद सुना होगा कि श्रीअरविन्द से अंग्रेज लोग डरते थे और कहा जाता है कि वह अगर बाहर रहें और सारे क्रान्तिकारियों को बन्द कर दिया जाए तो वह फिर एक फौज क्रान्तिकारियों की खड़ी कर लेंगे। बहुत दिनों तक उन्हें अंग्रेज लोग फँसाना चाहते थे ,अंत में अलीपुर बमकाण्ड में उन्हें विचाराधीन कैदी बना ही दिया गया। उस मामले में श्रीअरविन्द को जान बूझ कर फंसाया गया था। 1908-9 में वह अलीपुर जेल में बन्द रहे और उन्हें वहाँ पर आप लोगों की तरह ही अच्छा नहीं लगा परन्तु उन्होंने अपने अंदर प्रश्न किया कि किस गलती से उन्हें यहाँ पर लाया गया तो जवाब भी मिला कि कुछ समय पूर्व उनमें एक आध्यात्मिक वृत्ति आ रही थी जिसे उन्होंने अनसुना कर दिया।

अब हम पूरी घटना की चर्चा करते हुए यह बताने का प्रयास करेंगे कि उनके जेल के जीवन से किस तरह आप लोगों को प्रेरणा मिलेगी। अलीपुर जेल में उनको कष्ट हुआ लेकिन धीरे - धीरे उन्होंने योगाभ्यास किया और परिणाम यह हुआ कि सारे जेल अधिकारियों की मनोवृत्ति उनके प्रति एक अच्छी भावना में बदल गयी। जेल के अन्दर ही उन्हें भगवान कृष्ण के दर्शन हुए एवं उन्होंने उन्हें गीता का संदेश दिया। आपको याद ही होगा कि भगवान कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का संदेश दिया। जो आज भी सारी मानव जाति के उत्थान के लिए कितना आवश्यक है। एवं स्वामी विवेकानन्द की वाणी उन्हें लगभग दो हफ्ते तक सुनाई पड़ी जिसमें वेदान्त की बात थी (ध्यान रहे कि स्वामी विवेकानन्द ने 1902 में शरीर को छोड़ दिया था)। धीरे-धीरे उन्हें जेल के अन्दर कैदियों के रुप में भगवान कृष्ण नजर जाने लगे एवं पेड़ पौधों की डालियाँ वासुदेव की भुजायें लगने लगीं। जब कोर्ट में ट्रायल हुआ तो वहाँ पर भी सभी लोगों में वासुदेव के दर्शन होने लगे वे कोर्ट से निर्दोष साबित हुए परन्तु जेल के जीवन में उनकी साधना ने उनके आध्यात्मिक उन्नयन में बड़ा सहयोग किया।

आज हम इस घटना से प्रेरणा ले सकते है और आपको यह चिन्तन करना होगा हम यदि यहाँ पर आये हैं तो क्यों? क्या जो गलतियाँ हुई थीं उससे हम बच सकते थे? हमें यह भी सोचना है कि जो विपरीत परिस्थितियाँ हमारे सामने हैं उससे हम कैसे उपयोग करके अपना सुधार कर सकते हैं (Difficulties should be taken as opportunities) अपने को बेहतर इन्सान बना सकते हैं। हमें अपने को कोसना नहीं चाहिए बल्कि आगे उत्थान हेतु प्रयास करना चाहिए। आपका आज कैदी भाइयों का परिवार है, आप सब को यहाँ पर विभिन्न कार्य भी मिले होंगे। अगर उन कार्यों को आप आपसी सहयोग से करने का अभ्यास करते हुए करेंगे तो निश्चित रूप से सहयोग की भावना बढ़ेगी एवं आने वाले समय में आप बेहतर इन्सान बनेंगे। कार्य करते समय इस बात का ध्यान रखें कि यह कार्य हम भगवान के लिए कर रहे हैं, क्योंकि हमें समझना चाहिए कि यह पूरा जगत भगवान की ही अभिव्यक्ति है। अतः कार्य करते समय हम हर समय भगवान को ही याद रखें तो धीरे-धीरे इस समर्पण की भावना से आप प्रभु के एक बहुत अच्छे यंत्र बन जायेंगे। यहाँ भगवान से तात्पर्य ऐसी सत्ता से है जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वकालिक एवं सर्वशक्तिमान है। आप चाहे जिस भी नाम से पुकारें, वह शक्ति आप की पल पल पर मदद करेगी। धीरे-धीरे यह आपको अनुभव होने लगेगा। इस दृष्टि से अगर आप इस समय का सदुपयोग करेंगे तो यह यातना गृह नहीं, सुधार गृह हो जाएगा और आप जेल के बाहर एक नये रूप में निकलेंगे।

यदि आप लोक मान्य तिलक को याद करें तो उन्होंने जेल के अन्दर तिलक गीता लिखी जो आज भी बहुमूल्य धरोहर है। यदि हम संक्षेप में कहें तो यही मेरा निवेदन है कि यह समय ब्रह्म मुहूर्त का समय है, एवं पृथ्वी पर एक नयी चेतना का अवतरण हो चुका है और इस समय को इस परिस्थिति में रहते हुए हर काम परमात्मा को समर्पित करते हुए करें। मानव में ही सद्प्रवृत्तियाँ एवं दुष्प्रवृत्तियाँ रहती हैं। इस समय यदि सद्प्रवृत्तियों का विकास करेंगे तो निश्चित रूप से दुष्प्रवृत्तियाँ कम होती चली जाएंगीं और आपको सार्थक जीवन जीने में मदद मिलेगी।

डा. जे.पी. सिंह
सुलतानपुर

श्रीअरविन्द और मानव का भविष्य

डॉ. कृष्णा शारदा

श्रीअरविन्द आधुनिक युग के द्रष्टा ऋषि हैं। "हैं" क्रिया का प्रयोग करते ही कहना पड़ता है कि यद्यपि इस समय वे सशरीर उपस्थित नहीं हैं, तथापि उनकी भागवती चेतना आज भी हमारे बीच अपना कार्य निष्पन्न कर रही है। श्रीमाँ ने कहा था- "मैं गारन्टी देती हूँ कि जिन लोगों की चेतना पर्याप्त जागृत है, वे श्रीअरविन्द की चेतना का अनुभव कर सकते हैं।"

श्रीअरविन्द ने अपनी महत् योग साधना से त्रिकाल दर्शी दृष्टि प्राप्त की थी। उन्होंने भूत, वर्तमान और भविष्य का साक्षात्कार किया और कुछ ऐसे तत्वों को खोज निकाला, जिनकी चर्चा पहले कभी नहीं हुई थी। सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व है- अतिमानसिक चेतना। यह श्रीअरविन्द की नितान्त मौलिक कल्पना है और मानव के भविष्य से जुड़ी हुई है। उनके शब्दों में – "सुपरमाइन्ड" अर्थात् अतिमानस और "सुपरामेन्टल" अर्थात् अतिमानसिक - ये शब्द सबसे पहले मैंने ही प्रयुक्त किए थे। आगे उन्होंने कहा -"इस विचार का ज्ञान मुझे वेद या उपनिषद् से नहीं प्राप्त हुआ अतिमानसिक विषयक ज्ञान मुझे सीधा अपने अनुभव से प्राप्त हुआ, किसी दूसरे द्वारा प्राप्त किए गये ज्ञान से नहीं। इसे पुष्ट करने वाले उपनिषद् और वेद के कतिपय मंत्र केवल पीछे से मेरे देखने में आए। एक अन्य स्थान पर श्रीअरविन्द लिखते हैं- " यह एक ऐसी सत्य-चेतना है, जिसे वेदों में "ऋत् – चित्" कहा गया है और उपनिषदों में विज्ञानमयपुरूष।"

मानव के भविष्य की चर्चा श्रीअरविन्द ने प्रायःअपने सभी महान् ग्रन्थों में की है। इन चर्चाओं का मूल आधार उनकी चार प्रमुख एवं विशेष अनुभूतियाँ हैं, जिसमें से दो वे पांडिचेरी प्रस्थान से पूर्व प्राप्त कर चुके थे और शेष दो उनके पांडिचेरी निवास की उपलब्धियाँ हैं।

प्रथम अनुभूति थी - मन की पूर्ण निश्चल नीरवता और सम्पूर्ण चेतना की स्थिरता और अचंचलता। यह अनुभूति श्रीअरविन्द ने सन् 1908 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन से लौटने के पश्चात् योगी लेले के साथ तीन दिन तक निरंतर ध्यान - मग्न रहकर प्राप्त कर ली थी। योग – साधना के क्षेत्र में यह "समता" की वह स्थिति है, जिसे गीता में स्थित प्रज्ञ की स्थिति कहा

गया है। इस स्थिति में बाहरी जीवन के कार्य - कलाप सुख - दुःख संघर्ष - विषाद चलते रहते हैं किन्तु आन्तरिक चेतना इनसे प्रभावित नहीं होती। अन्तर में भागवती चेतना का अनुभव सदा बना रहता है। यही वह नींव है, जो योगी को द्रष्टा और ऋषि बनाती है।

द्वितीय अनुभूति अलीपुर जेल की थी। दिसम्बर सन् 1907 के प्रसिद्ध सूरत कांग्रेस अधिवेशन से लौटते हुए, श्रीअरविन्द ने बम्बई, मध्यभारत तथा बड़ौदा में जो भाषण दिए, उनका प्रभाव आलौकिक था। "कांग्रेस का इतिहास" के लेखक डॉ. पट्टाभिसीतारामय्या के शब्दों में - श्रीअरविन्द के प्रकाश की प्रभा एक बाढ़ की भाँति हिमालय से कन्याकुमारी तक अपने आप फैल गयी। योगी लेले के सम्पर्क के पश्चात् श्रीअरविन्द भाषण देने से पूर्व चित्त को सर्वथा शान्त और स्वस्थ कर लेते थे और विचार करने की प्रकिया को निश्चल बना देते थे। तदनन्तर ईश्वर - कृपा से जो वाणी निकलती, यही भाषण होता।

सहस्त्रों स्त्री पुरुष, बाल - वृद्ध मंत्र - मुग्ध हो, उनके व्याख्यान श्रवन करते और प्रभावित होते थे। वस्तुतः राजनीति और योगाभ्यास साथ - साथ चल रहा था। शीघ्र ही अंग्रेजी सरकार ने उन्हें बन्दी बनाकर अलीपुर जेल भेज दिया। 1909 में एक वर्ष तक अलीपुर कारावास में श्रीअरविन्द ने अपना समय गीता और उपनिषदों के अध्ययन एवं योग- साधना में बिताया। वहीं उन्हें स्पष्ट आभास हुआ कि सभी प्राणी तथा अन्य जो कुछ भी जगत् में है सब भगवान का ही रूप है। गीता का अध्ययन करते हुए, उन्हें द्वार- द्वारपाल आदि में साक्षात वासुदेव के दर्शन हुए। चारों ओर की हर वस्तु वासुदेवमय हो गयी। भारत स्वतंत्र होगा ही, यह पूर्वाभास प्राप्त हुआ। अंग्रेजी सरकार ने श्रीअरविन्द को देश - निर्वासन का आदेश देने का निश्चय किया है, यह सूचना आयरिश महिला मित्र निवेदिता बहिन के माध्यम से प्राप्त हुई। निजी अन्तः प्रेरणा के अनुसार श्रीअरविन्द ने स्वयं ही ब्रिटिश भारत का त्याग करने का निश्चय किया तथा कलकत्ता से चन्द्रनगर होते हुए 4 अप्रैल 1910 को फ्रेंच अधिकृत पांडिचेरी में जा पहुँचे।

तृतीय अनुभूति का मूल आधार, कठिन योग-साधना के पश्चात प्राप्त, श्रीअरविन्द की अन्तर्दृष्टि है। योगाभ्यास में सतत् तल्लीन रहते हुए एवं उच्च से उच्चतर चेतना प्राप्त करते हुए, श्रीअरविन्द ने साक्षात् अनुभव किया कि परमसद् - वस्तु एक है, निष्किय एवं सक्रिय ब्रह्म उसी एक के दो पक्ष हैं अर्थात् वही परम एक, अभिव्यक्ति के लिए पुरुष और प्रकृति, ये दो रूप धारण करता है। उन्होंने समस्त सृष्टि, रचना पुरुष और प्रकृति की लीला का ही वर्तमान मानव - सृष्टि तथा मानव के भविष्य की सृष्टि का अनुभव प्राप्त किया। इस प्रकार "त्रिकालदर्शी" श्रीअरविन्द भौतिक जगत् के अस्तित्व में निहित "अवरोहण" सिद्धान्त की स्थापना कर पाए। श्रीअरविन्द के कथनानुसार ब्रह्म का प्रतिनिधि चैत्य अतिमन ही, मन, प्राण के स्तरों से होता हुआ, जड़ बनता है तथा आरोहण सिद्धान्त के अनुरूप, जड़, प्राण, मन और अतिक्रम में क्रमशः विकसित होता है। मन - युक्त मानव तक सृष्टि का विकास हो चुका है। मानव का भविष्य है - अतिमानव का विकास अर्थात् अतिमानसिक सृष्टि भी अवश्यंभावी है।

चतुर्थ अनुभूति, श्रीअरविन्द की अतिमानसिक स्तर की उपलब्धि एवं इस स्तर को जगत् और जीवन में उतार लाने से सम्बन्धित है। श्रीअरविन्द के मतानुसार लक्ष्य केवल इस स्तर को प्राप्त करना ही नहीं, अपितु वहाँ की दिव्यता को मन, प्राण और जड़ में उतार लाना है। यही आज के मानव का अतिमानवत्व में दिव्य रूपान्तर होगा अर्थात् उस पूर्णता को पुनः प्राप्त करना होगा, जहाँ से आरम्भ में अपूर्णता की ओर अवरोहण हुआ था। जीवन और जगत् के संघर्षों एवं वेदनाओं का कारण

यही अपूर्णता और अज्ञानता रही है। मानव के भविष्य - की ओर संकेत करते हुए, श्रीअरविन्द ने कहा है कि पूर्ण मानव अर्थात् अतिमानव ही जीवन और जगत् में पूर्ण सुख - शान्ति का सम्राज्य स्थापित करने में समर्थ होगा।

श्रीअरविन्द की प्रथम तीन अनुभूतियाँ उनके पूर्व संस्कारों का प्रतिफल मानी जा सकती हैं। इनसे पूर्व भी अनेक मनीषियों ने इस प्रकार के अनुभवों की चर्चा की है। किन्तु, चतुर्थ अनुभूति श्रीअरविन्द का नितान्त मौलिक अनुभव है। आधुनिक मानव और भावी मानव को यही उनकी महान देन है।

अब हमारे सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब प्रकृति आदिकाल से इस विकास - क्रम को चला ही रही है और अतिमानव का आगमन अवश्यंभावी है, तो हम किसलिए इस प्रकार का ज्ञान अर्जित करें और अतिमानसिक सिद्धि के लिए पूर्ण - योग साधना में सम्मिलित हों ?श्रीअरविन्द का अधिकांश साहित्य इसी प्रश्न का महत् उत्तर है, जिसे संक्षेप में यहाँ लिया जा रहा है।

यद्यपि श्रीअरविन्द द्वारा वर्णित अतिमानसिक चेतना के अवरोहण क्रम का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, तथापि उनकी इस मान्यता को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि जड़ में प्राण, मन और अतिमन का विकास तभी संभव है, जब ये तत्व पहले से ही जड़ में निहित हों। उदाहरण के लिए, एक नन्हें से बीज से एक विशाल वट - वृक्ष की टहनियाँ, पत्ते, फूल और फल इसलिए विकसित हो जाते हैं, क्योंकि उस बीज में ये सब कुछ प्रच्छन्नावस्था में पहले से ही निहित है। इसी प्रकार सृष्टि के आरोहरण क्रम में अचेतन जड़ अर्द्धचेतन वनस्पति और पशु के विकास के पश्चात् सचेतन मानव का विकास, अपने आप में एक ऐसा प्रमाण है, जो आगामी अतिमानसिक स्थिति के विकसित होने की संभावना को पुष्ट करता है। वास्तव में जैसे वनमानुष के लिए आज के मानव की परिकल्पना कठिन थी, वैसे ही आज का मानव भावी अतिमानव की कल्पना करने में कठिनाई का अनुभव करता है। यह भी कहा जा सकता है कि सभी वनमानुष, एक ही दिन में मानव रूप में परिवर्तित नहीं हो गए होंगे, उनमें समय लगा होगा। इसी प्रकार मानव के अतिमानव में रूपान्तरित होने में भी समय लगेगा। एक तथ्य और भी है कि प्राचीन युग में रूपान्तर कार्य मात्र प्रकृति पर निर्भर था। किन्तु, आज प्रबुद्ध मानव अपने ज्ञान एवं पूर्ण योग - साधना पद्धति के बल पर, प्रकृति का सहयोगी बन सकता है और रूपान्तर साधित करने में त्वरित वेग और गति भर सकता है। इसीलिए आज हमें इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने और श्रीअरविन्द सम्मत पूर्ण योग - साधना पद्धति पर अग्रसर होने की आवश्यकता है। मानव के उज्जवल भविष्य का यही रहस्य श्रीअरविन्द का - महान् संदेश है।

श्रीअरविन्द ने, निजी अनुभव के आधार पर, आज के मानव को विश्वास दिलाते हुए लिखा है - मुझे निश्चित रूप से ज्ञात है कि अतिमानव एक सत्य है और जगत् की वस्तुस्थिति को देखते हुए, उसका अवतरण अवश्यंभावी है। प्रश्न तो केवल कब और कैसे का है और वह भी कहीं ऊपर से निश्चित और पूर्व निर्धारित हो चुका है। कुछ - एक आत्माएँ इसीलिए भेजी गई हैं कि वह अभी सिद्ध हो जाए।

श्रीअरविन्द यह भी निश्चित रूप से जानते हैं कि "अतिमानस" पहले थोड़े से व्यक्तियों में ही अभिव्यक्त होगा और पुनः औरों में भी फैलेगा। किन्तु यह संभव नहीं कि वह एक ही क्षण में सारे भूमंडल पर छा जाये।

सन् 1920 में श्रीमाँ मीरा, इस महत् कार्य में, श्रीअरविन्द की सहयोगिनी बनीं। मानव के उज्ज्वल भविष्य को उजागर

करने के लिए दोनों ने साथ - साथ कार्य किया। 24 अप्रैल 1950 को अतिमानसिक सिद्धि प्राप्त हुई। तत्पश्चात् अतिमानसिक दिव्य चेतना को, श्रीअरविन्द अपने भौतिक शरीर में, चिरकाल तक संयोजित न रख सके। अतः उन्होंने 5 दिसम्बर 1950 को भौतिक शरीर त्याग देने का निर्णय लिया। पाँच दिन तक उनका शरीर, अतिमानसिक दिव्य ज्योति से जगमगाता रहा। श्रीअरविन्द ने कह दिया था कि वे शरीर–त्याग के पश्चात् भी अतिमानसिक अवतरण–कार्य में निरत रहेंगे और 4 मई1967 तक कुछ शरीर उस दिव्य ज्योति को धारण करने योग्य हो जाएँगे। 4 मई 1967 को पांडिचेरी आश्रम को प्रांगण में सामूहिक–ध्यान का आयोजन हुआ था। दैवयोग से मैं स्वयं वहाँ उपस्थित थी। ध्यान के पश्चात् श्रीमाँ ने उद्घोषणा की थी कि कुल पाँच मानव शरीर दिव्य-ज्योति ग्रहण कर पाए हैं, जिनमें से दो आश्रम में उपस्थित हैं और तीन अन्यत्र कहीं हैं। इस दिवस को चिन्हित एवं स्मरणीय बनाने के लिए एक छोटा बैज वितरित किया गया था, जिस पर 4 मई 1967 की तिथि एवं श्रीअरविन्द का आध्यात्मिक चिन्ह अंकित है। यह बैज मील के पत्थर के प्रतीक-स्वरूप आज भी मेरे पास सुरक्षित है- मानव के दिव्य भविष्य की आशा में।

आज का मानव नाना समस्याओं से पीड़ित है, क्योंकि वह अज्ञानवश मात्र मन के बाह्य स्तर पर जीवनयापन करता है। मन के इस स्तर का स्वभाव है- नित नयी समस्याएँ बुनते रहना । श्रीअरविन्द के कथनानुसार, अति-मानस साधारण मानसिक स्तर से उत्कृष्टतर, पूर्ण ज्योति एवं ज्ञान है, अतः अतिमानसिक चैतन्य में समस्याएँ होती ही नहीं। समस्याएँ सदा बाहरी मन द्वारा किए गये भेदभावों से उत्पन्न होती हैं। अतिमानसिक चेतना में भेदभाव और अज्ञानमय तत्वों के लिए कोई अवकाश है ही नहीं। अतिमानसिक चेतना उच्च, दिव्य,सत्यपूर्ण एवं आनन्दमय चेतना है। श्रीअरविन्द की अन्तरदृष्टि ने उस भविष्य को देखा, जब आधुनिक जीवन और जगत् की नाना समस्याओं का निश्चित समाधान संभव होगा, जब मानव इस दिव्य चेतना को अपने जीवन और जगत् में उतार ले आएगा।

श्रीअरविन्द ने निजी अनुभव के आधार पर अतिमानसिक चेतना के अवतरण की प्रकिया का भी वर्णन किया है- "अतिमानसिक रूपान्तर तभी संभव हो सकता है, जब चैत्य हृत्- पुरुष में जागृत हो और वह उतरती हुई अतिमानसिक शक्ति का मुख्य आधार बना दिया जाए। वास्तव में चैत्यपुरुष सभी सजीव प्राणियों में विद्यमान है, किन्तु साधारण चेतना के पीछे छिपा रहता है और भगवान से संबद्ध रहता है ईश्वराभिमुख अनुभव से इसकी चेतना बढ़ती है और यह हृत्–पुरुष जो मन और प्राण से सर्वथा भिन्न है – चैत्य पुरुष के रूप में विकसित हो जाता है।

श्रीअरविन्द प्रतिपादित पूर्णयोग–साधना-पद्धति, चैत्य जागरण के लिए सहायक विधान है। श्रीअरविन्द की मान्यता है कि चैत्य-जागृति के लिए मानव की ओर से थोड़े से प्रयास की ही आवश्यकता है, क्योंकि जैसे सूर्यमुखी पुष्प का सूर्य की ओर मुड़ना स्वाभाविक है वैसे ही अन्तरात्मा या चैत्यपुरुष का स्वभाव भागवत सत्य की ओर मुड़ना है।

प्रश्न है, क्या आज हम इस थोड़े से प्रयास के लिए पूर्ण–योग–साधना पद्धति की ओर उन्मुख हों? कुछ दैवनिर्दिष्ट व्यक्तियों का इस ओर उन्मुख होना भी अवश्यंभावी है, क्योंकि साधारण जीवन की पीड़ाओं और निराशाओं से मुक्ति पाने का यही एक उपाय है। आज के मानव का शरीर और जीवन जिस अधिकतम आनंद को प्राप्त करने में समर्थ है, वह प्राणिक मन, स्नायुओं या कोषों का अल्पकालिक उत्तेजन है, जो सीमित और अपूर्ण है और शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अतिमानसिक रूपान्तर

द्वारा सभी कोष, स्नायु, प्राणिक और, अतिमानसिक शक्तियाँ सहल गुणा आनन्द से परिपूरित हो सकती हैं। यह वर्णनातीत आनन्द, कभी क्षीण नहीं होता। ऐसे दिव्य रूपान्तर को प्रकृति तो साधित कर ही रही है। मानव - साधक भी सहयोगी बनें, यही द्रष्टा ऋषि और महान् योगी श्रीअरविन्द का अमर सन्देश मानव के भविष्य के प्रति उपलब्ध है।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1990

हम जिस भगवान की खोज करते हैं वे हमसे दूर नहीं हैं, न ही वे हमारी पहुँच से परे हैं। वे अपनी सृष्टि के केन्द्र में उपस्थित हैं। वे हमसे इतना ही चाहते हैं कि हम उन्हें ढूँढ़े, अपने - आपको रूपान्तरित करके उन्हें जानने में समर्थ हों, उनसे संयुक्त हों तथा अन्त में, उन्हें चेतन रूप में अभिव्यक्त करें। हमें अपने-आपको इसी कार्य के प्रति समर्पित कर देना चाहिए, यही हमारे अस्तित्व का सच्चा हेतु भी है। और इस महान उपलब्धि की और हमारा पहला पग है अतिमानसिक 'चेतना' की अभिव्यक्ति।

श्रीमाँ

माँ ही माँ

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर

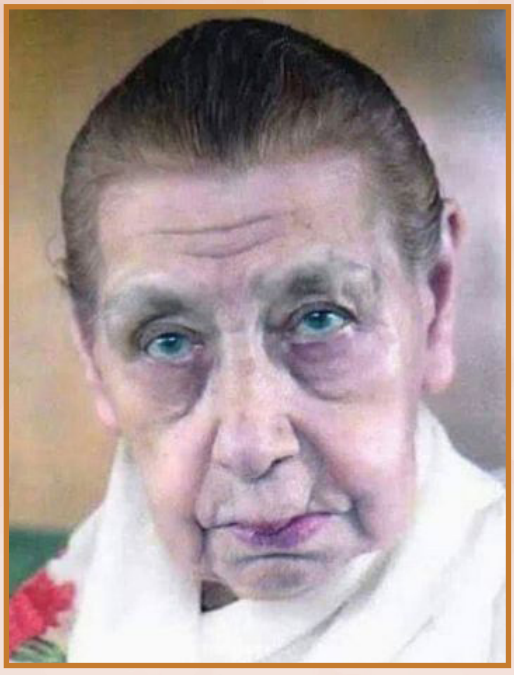

यह कैसी माँ है?

मैंने समझा मेरी माँ है। परन्तु जो मिलता है, कहता है - मेरी माँ है, मेरी माँ है। यह भी कोई बात हुई?

यदि इस तरह लाखों - करोड़ो की माँ हुई तो मेरे हिस्से क्या आयेगा? टॉफी का सारा डिब्बा खुलने पर बस एक टॉफी ! गुस्सा भी आता है, पर कुछ बन नहीं पाता।

मैंने एक दिन ठानी कि माँ से पूछ ही लूँ - तू मेरी माँ है कि सबकी माँ है ? जब गया तो जाते ही जो चाहता था वह मिल गया और पूछना भूल ही गया। अच्छा। मैंने सोचा अबकी बार पूछूँगा। अबकी बार अवश्य पूछूँगा। पर जाऊँ तो जो माँगू मिल जाये। जो चाहूँ मिल जाये।

बरसों बीत गये और वह बात धरी की धरी रह गयी। जब देखूँ लाइन लगी हुई है। क्यू में लोग जा रहे हैं और ओठों पर माँ - माँ रटन लगी है। और वापस आये तो ऐसे प्रसन्न - सन्तुष्ट जैसे सब - कुछ मिल गया हो। यह देख - देख कर तो मेरा खून रोजाना इतना बनता नहीं था जितना सूख जाता था। बरसों फिर बीत गये। अबकी बार सोचा कि चाहे जो कुछ मिल जाए फिर भी पूछ कर ही छोड़ूँगा। रूमाल में गाँठ बाँध ली और लाल - पीला होकर जीने पर चढ़ा। रुमाल की गाँठ तो जेब में ही रह गयी। गुस्से ने प्राणों में जगह ले ली।

माँ ने पूछा - बेटा क्या चाहिए?

मैंने भुनभुनाकर जवाब दिया - मुझे कुछ नहीं चाहिए।

माँ ने मुस्कराकर पूछा – तब तो तुम्हें सब - कुछ मिल गया।

मैंने भुनभुनाकर पुछा - पर तुम दूसरों की माँ क्यों बनती हो?

माँ प्यार से बोली - ताकि उनको भी तुम्हारी तरह सब - कुछ मिल सके और तुमसे छीना - झपटी न करें।

जब मैं वापस आया तो सोचने लगा कि कहीं ठगा तो नहीं गया हूँ।

गहरे से सोचा कि बात तो सच्ची है। माँ तो सबकी ही होती है और मैं तो अब बड़ा हो गया हूँ। जब मुझे सब - कुछ मिल गया है तो दूसरों को भी सब - कुछ मिल जाए, ठीक है। सब प्रसन्न होंगे तभी तो मैं भी प्रसन्न रह सकूँगा।

वाह री माँ!

तू तो माँ ही माँ है!

मेरी नहीं सबकी माँ है!

कर्मधारा 1973

श्रीअरविन्द की शिक्षा

श्रीअरविन्द

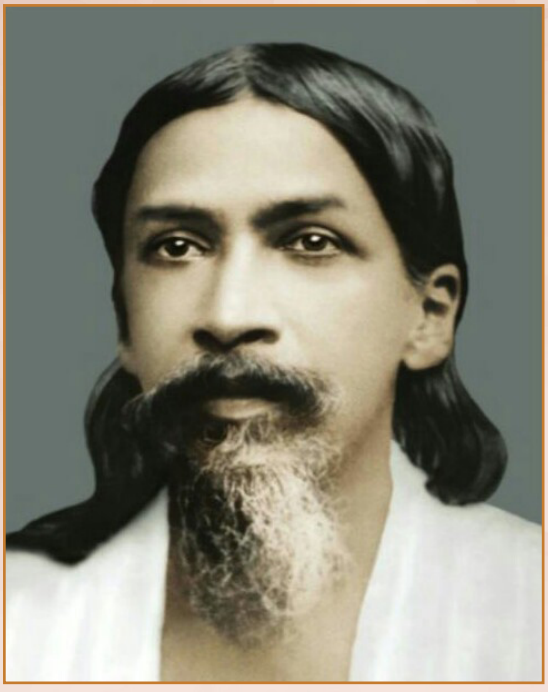

श्रीअरविन्द की शिक्षा भारत के प्राचीन ऋषियों की इस शिक्षा से आरम्भ होती है कि विश्व - ब्रह्माण्ड के आपातदृष्ट रूप के पीछे एक सद्वस्तु है - एक सत्ता और चेतना है, सब वस्तुओं का एक अद्वितीय और शाश्वत आत्मा है। सभी सत्ताएँ उस एक आत्मा के अन्दर एकीभूत हैं, अविभक्त हैं, परन्तु चेतना की एक प्रकार की विच्छिन्नता के कारण, अपने सत्य स्वरूप और वस्तु के विषय में ज्ञान न होने के कारण अपने मन, प्राण और शरीर में एक दूसरे से पृथक् हैं, विभक्त हैं। परन्तु एक आन्तरिक साधना के द्वारा भेदात्मक चेतना के इस आवरण को दूर किया जा सकता है और अपने सत्य स्वरुप को, अपने अन्दर तथा सबके अन्दर विद्यमान भगवान् को जाना जा सकता है।

श्रीअरविन्द की शिक्षा यह कहती है कि अद्वितीय सत्ता और चेतना यहाँ जड़ तत्त्व में अन्तर्लीन है और क्रमविवर्तन की प्रक्रिया के द्वारा वह अपने - आपको मुक्त करती है। जो कुछ निश्चेतन प्रतीत होता है उसी में फिर से चेतना दिखायी देती है और जब एक बार चेतना दिख जाती है, तब उसके बाद वह स्वतः प्रेरित होकर उच्च से उच्चतर होती है और साथ ही - साथ महत्तर पूर्णता की ओर अधिकाधिक प्रसारित और विकसित होती है। चेतना की इस मुक्ति की प्रथम अवस्था है प्राण, दूसरी अवस्था है मन परन्तु मन तक आकर ही चेतना का क्रमविवर्तन समाप्त नहीं हो जाता, वह किसी और भी महत्तर वस्तु के अन्दर, एक आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतना के अन्दर विनिर्मुक्त होने की प्रतीक्षा कर रही है। अतएव क्रमविवर्तन की आगे की अवस्था होगी अतिमानस और आत्मा का विकास तथा ये ही सचेतन सत्ता की प्रधान शक्ति होंगे केवल उसी अवस्था में सभी वस्तुओं में अन्तर्लीन भगवान् पूर्ण रूप से मुक्त होंगे और जीवन सर्वांगीण पूर्णता को व्यक्त करने में समर्थ होगा।

परन्तु प्रकृति ने उद्भिज और पशु में बिना किसी सचेतन इच्छा के ही क्रमविकास के आरम्भिक पग आगे बढ़ाये थे। मनुष्य में ही आकर वह अपने यन्त्र की एक सचेतन इच्छाशक्ति की सहायता से विकसित होने की क्षमता प्राप्त करती है। परन्तु फिर भी मनुष्य की केवल मानसिक इच्छाशक्ति की सहायता से इस कार्य का होना पूर्ण रूप से सम्भव नहीं, क्योंकि मन कुछ दूर तक ही आगे जाता है और उसके बाद वह केवल चक्कर काटा करता है। अतएव उस समय एक प्रकार के धर्मान्तर की, चेतना को पलट देने की आवश्यकता होती है जिससे कि मन एक उच्चतर तत्त्व में रूपान्तरित हो जाए। इसकी पद्धति हमें योग की प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुशीलता और साधना में मिलती है। प्राचीन काल में इस संसार से अलग होकर तथा स्वरूप या आत्मा की उच्चता में विलीन होकर यह रूपान्तर साधित करने कि चेष्टा की जाती थी। परन्तु श्रीअरविन्द की शिक्षा यह है कि उच्चतर तत्त्व का अवतरण सम्भव है और वह अवतरण हमारे आध्यात्मिक स्वरूप को, अन्तः पुरूष को केवल जगत् से बाहर ले

जाकर ही मुक्त नहीं करेगा, वरन् इस जगत् के अन्दर ही मुक्त करेगा, मन के अज्ञान या इसके अत्यन्त सीमित ज्ञान के स्थान में अतिमानसिक सत्य-चेतना को स्थापित करेगा। यही सत्य – चेतना अन्तःपुरुष का एक समुचित यन्त्र होगी और इसी की सहायता से मनुष्य अन्तर्मुखी और कर्ममुखी दोनों भावों में अपने - आपको प्राप्त कर सकेगा और अपनी वर्तमान पशु भावापन्न मानवता को अतिक्रम कर एक दिव्य जाति में परिणत हो सकेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योग के मनोवैज्ञानिक अनुशीलन और साधना का उपयोग किया जा सकता है। साधना के द्वारा अपनी सत्ता के सभी अंगों को खोला जा सकता है जिसमें कि उच्चतर तथा अब तक प्रच्छन्न अतिमानस-तत्त्व अवतरित तथा क्रियाशील होकर एक प्रकार का धर्मान्तर या रूपान्तर साधित करे।

अवश्य ही यह कार्य तुरत - फुरत या थोड़े से समय में अथवा किसी क्षिप्र या चमत्कारपूर्ण रूपान्तर के द्वारा नहीं पूरा किया जा सकता। साधक को बहुत से स्तर पार करने होते हैं और तब कहीं अतिमानस का अवतरण सम्भव होता है। साधारण तौर पर मनुष्य अधिकांश में अपने ऊपरी मन, प्राण और शरीर में ही निवास करता है, पर उसके अन्दर एक आन्तर सत्ता भी है, जिसमें बहुत - सी महत्तर सम्भावनाएँ निहित हैं। उसे अपने इसी आन्तर सत्ता से विषय में सचेतन होना होगा। अभी उस सत्ता का एक अत्यन्त सीमित प्रभाव मात्र ही मनुष्य तक आता है और वही उसे महत्तर प्रेरित करता रहता है। अतएव योग की सबसे पहली प्रक्रिया है इस आन्तर सत्ता के सभी दायरों को खोल देना और वहाँ रहते हुए बाहरी जीवन यापन करना। एक आन्तरिक ज्योति और शक्ति की सहायता से अपने बाहरी जीवन को नियंत्रित करना। जब मनुष्य ऐसा करता है तब वह उसके फलस्वरूप अपने अन्दर अपने सच्चे अन्तरात्मा का पता पाता है जो केवल मन, प्राण और शरीर रूपी उपादानों का बाहरी सम्मिश्रण नहीं है, बल्कि इस सबके पीछे, विद्यमान परम सद्वस्तु का एक अंश है, अद्वितीय भागवत अग्नि का स्फुलिंग है। मनुष्य को अपने इस अन्तरात्मा में निवास करना सीखना होगा और सत्य की ओर अन्तरात्मा का जो एक प्रवेग है उसके द्वारा अपनी अवशिष्ट प्रकृति को शुद्ध करना तथा उसे भी लक्ष्य की ओर मोड़ना होगा। तब उसके बाद आधार ऊपर की ओर खुल सकेगा और फिर उसके अन्दर दिव्य सत्ता का कोई उच्चतर तत्त्व अवतरण कर सकेगा। परन्तु इतना होने पर भी एकाएक पूर्ण अतिमानसिक ज्योति और शक्ति का अवतरण नहीं होता, क्योंकि साधारण मानव - मन और अतिमानसिक सत्य - चेतना के बीच में चेतना की बहुत - सी भूमिकाएँ हैं। चेतना की इन मध्यवर्ती भूमिकाओं को भी खोलना होता है और उनकी शक्ति को मन, प्राण और शरीर में उतारना होता है और ऐसा कर लेने के बाद ही अतिमानसिक सत्य - चेतना की पूर्ण शक्ति मनुष्य की प्रकृति के अन्दर कार्य करती है। अतएव इस आत्मानुशीलन या साधना की प्रक्रिया लम्बी और कठिन है परन्तु इसका थोड़ा - सा भी अंश यदि जीवन में उतारा जाए तो वह भी लाभ ही है, क्योंकि उससे अन्तिम मुक्त और सिद्धि और भी अधिक संभव हो जाती है।

प्राचीन योग पद्धतियों में ऐसी बहुत - सी चीजें हैं जिसकी इस पथ में भी आवश्यकता होती है जैसे, एक महत्तर विशालता की ओर तथा आत्मा और अनन्त की अनुभूति की ओर अपने मन को खोल रखना जिसे विश्वचेतना कहा जाता है, उसमें जागृत होना, वासनाओं और षड् - रिपुओं पर प्रभुत्व स्थापित करना। अवश्य ही बाह्य तपस्या आवश्यक नहीं है, परन्तु कामना -वासना और आसक्ति पर विजय प्राप्त करना तथा शरीर और उसकी आवश्यकताओं की लालसाओं और अन्ध - प्रेरणाओं को संयमित करना अपरिहार्य है। इस मार्ग में प्राचीन योग - पद्धतियों की सभी मूल बातों का समावेश किया गया है जैसे, ज्ञान - मार्ग का मन के द्वारा सद्वस्तु और बाह्य रूप के बीच विवेक करना, हृदय - मार्ग का भक्ति, प्रेम और आत्मसमर्पण करना, कर्म - मार्ग का अपनी इच्छाशक्ति को स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से हटाकर सत्य की ओर लगाना, अपने अहं को महत्तर दिव्य सद्वस्तु की सेवा में नियुक्त करना इत्यादि। इस मार्ग में समग्र सत्ता को इस प्रकार तैयार करना होता है कि जब महत्तर ज्योति और शक्ति के लिए

स्वभाव के अन्दर क्रिया करना संभव हो तब सारी सत्ता उनकी क्रिया के अनुकूल बन सके तथा रूपान्तरित हो सके।

इस साधना में गुरु की प्रेरणा तथा कठिन अवस्थाओं में उनका नियंत्रण और उनकी उपस्थिति अपरिहार्य है। इसके अभाव में कोई भी साधक इस पथ पर काफी ठोकरें खाये बिना और भूल - भ्रांति किये बिना अग्रसर नहीं हो सकता और इसके कारण सफलता की सारी संभावना नष्ट हो सकती है। गुरू वह है जो एक उच्चतर चेतना और सत्ता का व्यक्त रूप या प्रतिनिधि माना जाता है। वह केवल अपनी शिक्षा द्वारा और उससे भी अधिक अपने प्रभाव तथा उदाहरण के द्वारा ही नहीं बल्कि अपनी अनुभूति को दूसरों में संचारित करने की शक्ति के द्वारा भी सहायता करते हैं।

यही श्रीअरविन्द की शिक्षा तथा उनकी साधना - पद्धति है। किसी एक धर्मविशेष को उन्नत करना अथवा प्राचीन धर्मों को एक साथ मिला देना या कोई नया धर्म प्रचलित करना, श्रीअरविन्द का उद्देश्य नहीं है, क्योंकि इनमें से कोई भी चीज उनके मुख्य उद्देश्य से दूर हटा ले जायेगी। उनके योग का एकमात्र उद्देश्य है, आन्तरिक आत्म - विकास, जिसके द्वारा इस योग का प्रत्येक साधक यथा समय सर्वभूतों में स्थिर अद्वितीय आत्मा को प्राप्त कर सकता है तथा अपने अन्दर मानसिक चेतना से एक ऐसी उच्चतर चेतना को, एक ऐसी आध्यात्मिक और अतिमानसिक चेतना को विकसित कर सकता है जो मानव-प्रकृति को रूपान्तरित कर दिव्य बना देगी।

श्रीअरविन्द – ग्रन्थमाला से
कर्मधारा 1983

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल मे परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है।

श्रीअरविन्द

अग्निशिखा अप्रैल 2017

मैं तुम्हारा हूँ

अपने संकल्प को दृढ़ रखो। अपने उद्धत भागों के साथ ऐसा व्यवहार करो जैसा कहना ना मानने वाले बालकों के साथ किया जाता है। उन पर लगातार और ध्यानपूर्वक क्रिया करते रहो, उन्हें उनकी भूल का अहसास दिला दो।

तुम्हारी चेतना की गहराइयों में विराजमान है चैत्य पुरुष, तुम्हारे अन्दर स्थित भगवान् का मन्दिर। यही वह केन्द्र है जिसके चारों ओर तुम्हारी सत्ता के इन विभिन्न भागों को, इन सब परस्पर - विरोधी गतियों को जाकर एक हो जाना चाहिए। तुम एक बार चैत्य पुरुष की चेतना को और अभीप्सा को पा लो तो इन सन्देहों और कठिनाइयों को नष्ट किया जा सकता है। इस काम में कम या अधिक समय तो लगेगा, परन्तु अन्त में तुम सफल अवश्य हो जाओगे। अगर तुमने एक बार भगवान् की ओर मुड़ कर कहा कि मैं आपका होना चाहता हूँ, और भगवान् ने हाँ कह दिया है तो समस्त जगत् तुम्हें उनसे अलग नहीं रख सकता। जब केन्द्रीय सत्ता ने समर्पण कर दिया है तो मुख्य कठिनाई दूर हो गयी। बह्य सत्ता तो एक पपड़ी की तरह है। साधारण लोगों में यह पपड़ी इतनी कठोर और मोटी होती है कि इसके कारण वे अपने अन्दर के भगवान् से सचेतन नहीं हो पाते। परन्तु यदि आन्तरपुरुष ने एक बार, क्षण - भर के लिए ही सही, यह कह दिया है कि मैं यहाँ हूँ और मैं तुम्हारा हूँ तो मानो एक पुल बँध जाता है और यह बाहरी पपड़ी धीरे - धीरे पतली से पतली पड़ती जाती है और एक दिन आयेगा जब दोनों भाग पूर्ण रूप से जुड़ जाएंगे और आन्तर तथा बाह्य दोनों एक हो जाएंगे।

अग्निशिखा मार्च 2020

आश्रम गतिविधियाँ

24 मार्च करुणा दीदी का जन्मदिन

24 मार्च को आश्रम में बड़े हर्ष का दिन था इस दिन आश्रम की साधिका करूणा दीदी के जन्मदिन के उपलक्ष्य में उन्हें याद करते हुए ध्यान कक्ष में भक्ति संगीत का आयोजन किया गया।

29 मार्च श्रीमाँ का प्रथम पण्डिचेरी आगमन

29 मार्च यह दिन आश्रम के लिए बहुत महत्तवपूर्ण है इस दिन श्रीमाँ प्रथम बार पांडिचेरी आई थी। इस दिन माँ को याद करते हुए सभी आश्रमवासियों द्वारा संध्या समय दीप जलाए गये व ध्यान कक्ष में भक्ति संगीत का आयोजन किया गया व तारा दीदी द्वारा Reading की गई।

4 अप्रैल श्रीअरविन्द का पाण्डिचेरी आगमन

4 अप्रैल को 1910 को श्रीअरविन्द ने पॉण्डिचेरी में प्रस्थान किया था इसी दिन को याद करते हुए श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली में सध्या समय ध्यान कक्ष में भक्ति संगीत का आयोजन किया गया। तत्पश्चात दीप प्रज्वलित किये गए।

इसी दिन दिल्ली आश्रम के अतिथि ग्रह तपस्या की भी स्थापना कि गई थी।

24 अप्रैल श्रीमाँ का स्थायी पाण्डिचेरी आगमन

24 अप्रैल बहुत महत्त्वपूर्ण दिवस है इस दिन श्रीमाँ हमेशा के लिए अपना देश छोड़ कर पाण्डिचेरी आई थी इस बार श्रीमाँ के आगमन को सौ वर्ष पूर्ण हुए ।